एक विलक्षण संत

भगवान गोपीनाथ जी

जीवन और सन्देश

जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी

मूल लेखक-त्रिलोकीनाथ धर 'कुन्दन'
अनुवादक - दिलीप कुमार कौल

एक विलक्षण संत

भगवान गोपीनाथ जी

उनका जीवन और सन्देश

एक विलक्षण संत
भगवान् गोपी नाथ जी
जीवन और संदेश

मूल लेखक - त्रिलोकी नाथ धर 'कुन्दन'

अंग्रेज़ी से अनुवाद :-

दिलीप कुमार कौल

जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी चैरिटेबल, कल्चरल एण्ड रिसर्च फाउन्डेशन (रजि.) 1/बी, दयालसर रोड़, बैंक आफ बरोड़ा लेन, उत्तम नगर, नयी दिल्ली।

www.jagatgurufoundation.com

प्रथम संस्करण - 2007

मुद्रक :- विमल एन्टर प्रायज़िज़
भीकाजी कामा प्लेस, नई दिल्ली - 110066

प्रकाशक :- जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी चैरिटेबल,
कल्चरल एण्ड रिसर्च फाउन्डेशन,
उत्तम नगर, नयी दिल्ली - 110059

मूल्य : 100 रूपये

समर्पण

भगवान जी के भक्तों को

जो अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिये 'साधना' कर रहे हैं

मानव कल्याण के लिये 'सेवा' कर रहे हैं

जिनका हृदय पवित्र और मन शुद्ध है

जिनके अस्तित्व के कण-कण में

'स्यज़र, पज़र और शोज़र' है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम्।
ज्ञानमूलं गुरोवार्क्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।

विनीत

त्रिलोकी नाथ धर 'कुन्दन'

विषय सूची

प्रस्तावना

ऊँ नमो भगवते गोपीनाथाय

होश दिम लगयो पम्पोश पादन

हा सादन हुन्दि सादो हो।

(पद्मपुष्प चरणों पर आपके वार दिया यह जीवन

हे संतों के संत मुझे आप जड़ से कर दो चेतन)

3 जुलाई 2002 को जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी का 104 वां अवतरण दिवस था। उत्तम नगर, दिल्ली में एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा था। और संगीत साधना सदन के गायकों का एक दल ऊपर दी गई पंक्तियां गा रहा था। यह एक बहुत ही लोकप्रिय कश्मीरी भक्ति गीत है और उस संगीत संस्थान के प्रधानचार्य प्रो. मक्खन लाल 'उदय' यह गीत सुनकर भाव-विभोर हो गये। उन्होनें कहा कि ऐसा लगता है ये पंक्तियां जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी के लिये ही लिखी गई हैं। इन पंक्तियों से मेरे स्मृति पटल पर अतीत की अनेक घटनाएं फिर से जीवंत हो उठीं। कई बार भगवान जी ने मुझे रातों को अपने पास ठहरा कर अपने चरण कमलों की सेवा का सौभाग्य प्रदान किया। उसी मकान में रहने वाले श्री बद्री नाथ खोडबली भी हमारे पास ही आ जाया करते थे। वे देर रात तक भगवान जी के सामने ऊपर दिया गया भक्ति गीत गाते रहते।

भगवान जी को प्यार से 'टाठि बब' कहा जाता है। कुछ ही लोग उनसे जीवन भर जुड़े रहे। यह सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ। 2 नवम्बर 1947 का दिन था,

लगता है जैसे कल ही की बात हो। मुझे पहली बार भगवान जी का 'प्रसाद' प्राप्त करने का अवसर याद आ रहा है। मेरे पिता जी श्री दीना नाथ कौल और चाचा श्री गोबिन्द कौल देर रात को भगवान जी के यहां से यह प्रसाद लेकर आये थे। भगवान जी उन दिनों श्रीनगर के ऋषि मोहल्ला में निवास करते थे। यह उनका ही अनुग्रह था कि अगले दिन ही श्रीनगर शहर को बचा लिया गया था। आक्रमणकारी पाकिस्तानी कबाइली शहर से कुछ ही दूर शालटेंग के पास रोक लिये गये थे। पिताजी और चाचाजी नियम से भगवान जी के दर्शनों को जाया करते थे। उनके साथ मैं भी कभी जाया करता था और अक्सर उनका आशीर्वाद प्राप्त करता था। यह गुरु कृपा का ही प्रसाद था कि हमारा परिवार कुछ समय के लिये पुरातनी मकान को छोड़ कर बब महाराज के निवास के निकट ही रहने लगा। हम 1967 से 1969 तक वहां रहे। हमारे परिवार को उनकी सेवा करने, उनके अनमोल वचन सुनने और उनके दिव्य आभामण्डल से लाभान्वित होने के असंख्य अवसर मिले। भगवान जी की भक्ति में आनन्द ही आनन्द था। इससे मेरी धर्मपत्नी को प्रेरणा मिली और वह नियम से उनके दर्शन को जाने लगी। एक बार मैं वहां पहले से ही बैठा हुआ था। मेरी धर्मपत्नी के आते ही टाठि बब ने कहा कि वह पार्वती है। शायद वे हर पुरूष में शिव और हर स्त्री में पार्वती को देखते थे। फिर भी मेरी धर्मपत्नी को पार्वती कहना उनका विशेष अनुग्रह है और इसीलिये आजतक का हमारा जीवन सुखी और आनन्दमय रहा है। यह अनुग्रह हमारे पूरे परिवार पर रहा। अभी भी हम उनको अपने निकट ही महसूस करते हैं। वे सदा हमारे निकट ही रहें और उनकी कृपा बनी रहे यही प्रार्थना है। पंचस्तवी के चौथे स्तव के श्लोक -

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्बकेचिदाऽनन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम्।

त्वां विश्वमाहुरपरे व्यमामनाम, साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव।।

को उपस्थित भक्तजनो ने बड़े मधुर स्वर में रातगये तक 27 मई 1968 को गाया जबकि किसी को भी ज़रा सा संकेत न लगा कि क्या इस प्रकार की सभा यह विशेष होकर ही रहेगी, भक्त इन्हें श्री गणेश तथा भगवान नारायण का स्वरूप जानकर भी पूजते है कई भक्त इन्हें माता शारिका का ही प्रतिरूप समझकर इनके सामने ये श्लोक पढ़ते थे :-

बालार्क कोटि द्युतिमिन्दुचूडां
वरासि चक्रा भय बाहुमाद्याम।।
सिंहाधिरूढां शिववामदेह
लीनां भजे चेतसि शारिकेशीम्।।
प्रद्युम्नशिरव्रासीनां मातृचक्रोपशोभिताम्।
पीठेश्वरीं शिलारूपां शारिकां प्रणमाम्यहम्।।

मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि भगवान जी हर ऐसे मनुष्य की सहायता के लयि तत्पर रहते हैं, जो साधना के पथ पर, सत्य के अन्वेषण के पथ पर चल रहा है। जिन लोगों ने उन्हें सच्चे मन से पुकारा और जो उनकी कृपा के पात्र थे वे कभी निराश नहीं हुए। हर प्रकार से इन लोगों ने भगवान जी को अपने निकट पाया। वे सचमुच गोपीनाथ ही हैं। गोपियों को भगवान कृष्ण से जैसा अटूट और अगाध प्रेम था, वैसा ही प्रेम यदि हम भगवान जी से करें तो वे निश्चय ही अपने भक्त का मार्गदर्शन करेंगे। वे ऐसी उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर गये हैं कि भक्त को केवल उन्हें अपने मन में बिठाना है और उनका ध्यान करना है। बस! गंगा के पवित्र जल की तरह उनकी अनुकम्पा हमारी ओर बहती चली आयेगी। जब वे अपने

भौतिक रूप में हमारे बीच थे तो लोगों को उनसे भौतिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हुये। इस समय अपने सूक्ष्म रूप में भी उनका मार्गदर्शन लोगों को मिल रहा है। वे निरन्तर शांति और चिर आनन्द के स्त्रोत हैं।

गोपियों और श्रीकृष्ण के प्रेम की कथा सभी जानते है। हनुमान का श्रीराम से प्रेम तो हनुमान को भी भगवान बना देता है। पार्वती का शिव से बंधन तो इस जगत का आधार है। अहिल्या, शबरी और द्रौपदी जैसे कईयों ने तारनहार प्रभु के चरणों में आश्रय लिया। भगवान जी के प्रति भक्तों की ऐसी प्रतिबद्धता वर्तमान में भी दिखाई देती है। कुछ भक्त उनके पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं, कुछ उनकी कीर्ति गाते हैं और कुछ उनका ध्यान करते हैं। इन सबका आध्यात्मिक उत्थान होता है और उन्हें असीम शांति मिलती है। गुरु गीता में भगवान शिव कहते हैं कि गुरु की स्थिति से बड़ी आध्यात्मिक स्थिति कोई नहीं होती, गुरु की सेवा से बड़ा कोई पुण्य नहीं होता और गुरु की कृपा से प्राप्त किये गये सत्य के ज्ञान से बड़ा कोई ज्ञान नहीं होता। सच्चा भक्त पूरे ब्रह्माण्ड के साथ एकाकार होकर गुरु का ध्यान करता है। साधक जानता है कि उस परम तत्व से बड़ा कुछ नहीं हैं वह परम सत्य इस नश्वर संसार में दिखाई देने वाली भौतिक वस्तुओं से परे है। साधक इसी परम सत्य का साक्षात्कार चाहता है जो बब महाराज की कृपा से सहज ही प्राप्त हो जाता है।

सौभाग्य से भगवान जी के जीवन और संदेश पर बहुत सारी सामग्री उपलब्ध है। श्री शंकरनाथ फोतेदार ने उनकी पहली जीवनी लिखी है। अन्य विद्वानों और भगवान जो के भक्तों ने उनके विषय में बहुत कुछ लिखा है। कुछ ने अपने अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है और कुछ ने अपनी प्रार्थनाएं उनको समर्पित की हैं। ऐसे भक्त लेखकों की संख्या बहुत है इनमें प्रोफेसर अमरनाथ धर, श्री बी.एल.हण्डू 'उपकारी'

प्रो0 सालिग्राम भट, श्री अवतार तिकवू (जेनिवा के) प्रो0 मक्खन लाल कुकिलू, प. चमन लाल राज़दान श्री पुष्कर नाथ कौल 'पोशिमोत' श्री पृथ्वीनाथ कौल 'सायल' और श्री अशोक रैणा भक्त गायक आते हैं। भगवान जी के बारें में कई बातों का पता कुछ समय पहले ही चला है इस संसार में भगवान जी की निरंतर उपस्थिति और भक्तों पर कृपा के आश्चर्यजनक विवरण सुनने को मिल रहे हैं। इस लिये कई भक्तों की इच्छा थी कि भगवान जी की एक और जीवनी एक अलग दृष्टिकोण से लिखी जाये। इस कार्य के लिये जगदगुरु भगवान गोपीनाथजी चैरिटेबल फाउंडेशन ने श्री त्रिलोकीनाथ धर 'कुन्दन' से सम्पर्क किया। सौभाग्य से विद्वान लेखक ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उनकी योग्यता और विद्वता के बारें में सभी जानते हैं। उन्होनें 'पत्रिका' और 'प्रकाश भगवान गोपीनाथ' में कई विचारोत्तेजक लेख लिखे हैं।

श्री कुन्दन ने भगवान जी की बहुत ही प्रभावशाली जीवनी अंग्रेज़ी में लिखी हैं इतने कम समय में इतना अच्छा काम वही कर सकते थे। उन्होंने एक ओर तो हमारी परम्परा का निर्माण करने वाले असंख्य संतों के परिप्रेक्ष्य में भगवान जी का अवलोकन किया है, तो दूसरी ओर भगवान जी के आध्यात्मिक उदगार को व्यापक भारतीय आध्यात्मिक परम्परा और शास्त्रों से जोड़कर देखा है। पाठकों को निश्चय ही यह ग्रन्थ प्रेरक ओर रोचक लगा। ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में वे ज़ोर देकर कहते हैं कि 'भगवान चेतना' को फैलाने की आवश्यकता है। इस भगवान चेतना की छत्रछाया में हर भक्त आयेगा और पूरी मानवता का भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान तो होगा ही उसे संतोष की प्राप्ति भी होगी। इस भक्तिपूर्ण कर्म के लिये हम कुन्दन जी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं क्योंकि इस ग्रन्थ के लिये जैसी गम्भीरता और प्रतिबद्धता अपेक्षित थी वेसी ही उन्होंने दिखाई। यहां मैं श्री बी.एल. काक जैसे

साहसी और प्रतिबद्ध पत्रकार का नाम भी लेना चाहूंगा जिन्होंने 1999 में कर्गिल युद्ध में टाइगर हिल्ज़ पर भगवान जी की उपस्थिति का समाचार देने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई। भगवान जी के मार्गदर्शन से भारत के वीर सैनिक इस महत्वपूर्ण चोटी पर अधिकार करने में सफल रहे। श्री काक ने कुन्दन जी के ग्रन्थ की पांडुलिपि का भी निरीक्षण किया। उन्होंने और डॉ. बी.एल पंडित ने कुछ मूल्यवान सुझाव दिये जिन्हें विद्वान लेखक ने अपने ग्रन्थ में उचित स्थान दिया। हम दोनों महानुभावों के आभारी है। हमने 'कौशुर समाचार' और 'प्रकाश भगवान गोपीनाथ' में भक्तजनों से भगवान जी को लेकर उनके अनुभवों को लिखकर भेजने की प्रार्थना की थी। बहुत सारे भक्तजनों की प्रतिक्रयायें हमें प्राप्त हुई जिन्हें ग्रन्थ में स्थान दिया गया। हम सब के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

भगवान जी की कृपा से अब ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में हैं इस से पहले जगटगुरु भगवान गोपीनाथ जी चौरिटेबल, कलचरल एण्ड रिसर्च फाउन्डेशन ने श्री बी.एल. काक की लिखी किताब 'लार्ड गोपीनाथ' अंग्रेजी में प्रकाशित की जो भगवान जी की काश्मीर स्थिति पर विशेष दिलचस्पी का दृश्य तथा दूसरे विषयों पर एक पत्रकार की दृष्टि दर्शाती है।

इसके इलावा फाउन्डेशन ने 'भगवान गोपीनाथ जी नामावली' प्रकाशित की जिसे प्रो. मक्खनलाल कुकिलू ने रचा है, और इसका हिन्दी अनुवाद भी किया हैं इसके साथ ही नामावली का अंग्रेजी अनुवाद तथा अंग्रेजी में ही व्याख्या डॉ. चमन लाल रैना जो अमेरिका की फलोरिडा आध्यात्मिक युनिवर्सिटी में कार्यरत है, एक साथ छापी हैं। 2006 में भगवान जी पर पहली उर्दू किताब डॉ. प्रेमी रोमानी की प्रकाशित हुई जिसका मूल अंग्रेजी में श्री कुन्दन जी की लिखी किताब हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए फाउन्डेशन श्री दिलीप कुमार कौल का धन्यवाद करता हैं जिन्होंने श्री कुन्दन जी की लिखी पुस्तक का अत्यन्त सुन्दर अनुवाद किया जो हिन्दी भाषी लोगों को लाभान्वित करेगा। अन्त में हम श्री कुन्दन जी का आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने इस अनुवाद का निरीक्षण किया।

आर्शीवाद, स्नेह तथा शुभकामनाओं सहित,

प्राण नाथ कौल

1745/सैक्टर-23, गुड़गांव, हरियाणा

भूमिका

असीम को सीमित करने की चेष्टा

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमूर्वि
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानां ईश पारं न याति।
(स्याही के पर्वत धुल जायें सिंधु पात्र में
तरुवर की शाखाओं की लेखनी बनाकर
पूरी पृथ्वी को कागज़ में परिवर्तित कर
लिखती रहें शारदा मैय्या हर क्षण, हर पल,
परम पिता संभव न हो तेरा गुण वर्णन।

(श्रीशिव महिम्नः स्तोत्रम्)

पढ़ाई पूरी करते ही मुझे केन्द्र सरकार में नौकरी मिल गई और कश्मीर छोड़ना पड़ा। मैं मैदानी इलाकों में रहने लगा और हर तीसरे, चौथे बरस घर आता रहा। विद्यार्थी जीवन में भगवान गोपीनाथ जी के बारें में न कुछ सुनने को मिला न जानने को। इसलिये मुझे उनके भौतिक शरीर के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। नौकरी करते हुये भी उनके बारे में कुछ पता नहीं था।

एक दिन मैं अपने एक प्रिय मित्र प्रोफेसर अमर नाथ धर से मिलने दिल्ली के पम्पोश एन्क्लेव में स्थित भगवान गोपीनाथ जी आश्रम पहुंचा। प्रोफेसर धर स्वयं भी एक पवित्र आत्मा हैं। भगवान जी के इस आश्रम में पहली बार जाने से ही मुझे बहुत

बड़ा आध्यात्मिक अनुभव हुआ। तब तक वहां भगवान जी की संगमरमर की मूर्ति स्थापित नहीं की गई थी। पूजागृह में उनका एक आदमकद चित्र था और पादुका भी अलग से रखी गई थी। भक्तजन कीर्तन कर रहे थे और 'ओम् नमो भगवते गोपीनाथाय' गा रहे थे। भगवान जी के चित्र में से उनकी आंखें ऐसा लगता था कि हमारे अंदर तक देख रही हैं उनके चमकते ललाट पर बहुत बड़े केसर तिलक की आभा से लग रहा था कि सबकुछ उनके ही वश में है। बड़ी सी सफेद पगड़ी और विशिष्ट कश्मीरी रंग वाले फिरन में वे अपने से लग रहे थे। उनके अधखुले होठों से लग रहा था कि अभी बोल पड़ेंगें और फिर सब कुछ मंगलमय होगा। पवित्रता और देवत्व से भरे हुये वे स्वयं मंगलमूर्ति ही लग रहे थे। पूरा वातावरण ऐसा पवित्र, ऐसा आध्यात्मिक था कि जैसे यह आश्रम का कमरा इस संसार में नहीं किसी अन्य ही दिव्य लोक में स्थित हो। अब क्या करना था। मैंने स्वयं को भगवान जी को समर्पित कर दिया। इतना ही नही, इसी दिन मेरे मित्रों की सूची में भी वृद्धि हुई। भगवान गोपीनाथ जी ट्रस्टके तबके सचिव पं. प्राणनाथ कौल का सान्निध्य मुझे प्राप्त हुआ जिससे मैं अभी भी लाभान्वित हो रहा हूं। प्रोफेसर धर और कौल साहब से मुझे भगवान जी के बारे में बहुत कुछ पता चला।

भगवान जी से सम्बंधित जानकारी का अध्ययन करने पर मुझे लगा कि इस असाधारण और पवित्र आत्मा को तो मैं युगों से जानता हूं। उनके जीवन के बारें में पढ़ने से मुझे आनन्द आने लगा। उनके दिव्य वचनों पर विचार करते-करते तो मैं उनके अर्थ की गहराई और व्यापकता में डूब ही जाता था। अधिकतर साधु लोग तो लच्छेदार भाषा में लम्बे लम्बें प्रवचन देते हैं परन्तु भगवान जी का मौन ही सभी

शाब्दिक अभिव्यक्तियों से अधिक सटीक और अधिक सार्थक है। जब वे किसी पर चिमटा फेंक कर मारते थे तो पता नहीं चल पाता था कि वे क्रोधित हैं या प्रसन्न। कभी कभी वे अपने साथ ही कुछ बुदबुदाते थे या किसी के साथ फुसफुसाकर बात करते थे। चिलम में तम्बाकू और अन्य मादक पदार्थ डालकर भगवान जी पीते थे तो कुछ लोगों को हैरानी होती थी। उन्हें मांस खाते देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। उनकी खाने पीने की आदतें अजीब ही थी। कभी-कभी महीनों तक कुछ नहीं खाते थे और फिर कभी बहुत सारा भोजन एक साथ खा जाते थे। भक्तजनों की लाई शराब भी स्वीकार करते थे जिसमें से कुछ तो वे स्वयं पीते थे और कुछ पास बैठे अन्य भक्तों में बांट देते थे। कभी-कभी अपने में ही मग्न, आकाश की ओर ताकते रहते। समय-समय पर जलती हुई धूनी में आहुतियां देते रहते । अपने शरीर की आवश्यकताओं पर ध्यान नही देते थे पर जब दूसरों के मन की बातें बता देते थे तो लोग हैरान रह जाते थे। कई बार तो उनकी बातों का अर्थ समझ में ही नहीं आता था। कुछ को प्रश्नों के सीधे-सीधे उत्तर मिल जाते थे और कुछ को परोक्ष रूप से। कुछ को समस्याओं के समाधान मिल जाते थे और कुछ केवल दर्शन करके ही लौट जाते थे। उनकी दी हुई पवित्र भस्म की एक चुटकी ही अमृत का कार्य करती थी और असाध्य रोग दूर हो जाते थे। उनका हर कार्य रहस्यमय था। उन्हें दस बारह बार घर बदलना पड़ा। आज के हिसाब से वे अधिक पढ़े लिखें नहीं थे पर उन्हें पारम्परिक आध्यात्मिक ग्रन्थों जैसे भगवद्गीता, गुरु गीता, भवानी सहस्त्रनाम, पञ्चस्तवी और महिम्नस्तोत्र की गहरी समझ थी। संतों से मिलने और तीर्थ यात्राएं करने में उन्हें आनन्द आता था। सन्तूर और साज़े कश्मीर जैसे वाद्ययंत्रों के साथ गाया जाने वाला सूफियाना संगीत उन्हें बहुत अच्छा लगता था। उनके जीवन और संदेश पर मैंने कई लेख लिखे। ये लेख पत्रिका

में छपे जिसका नाम अब 'शुद्ध विद्या' रखा गया है यह भगवान गोपीनाथ जी ट्रस्ट की पत्रिका हैं 'प्रकाश भगवान गोपीनाथ' में भी प्रोफेसर बी.एल. पंडित ने मरे लेख छापे। जो जगद्गुरू भगवान गोपीनाथ जी फाउन्डेशन की पत्रिका है। भगवान जी के बारें में बहुत कुछ लिखा गया है। बहुत कुछ अभी भी पता नहीं हैं उनके एक अनन्य भक्त श्री शंकर नाथ फोतेदार ने उनकी बहुत अच्छी जीवनी लिखी है। उनके अत्यन्त निकट रहे भक्त पं. प्राणनाथ कौल ने अपना जीवन ही भगवान जी की सेवा में लगा दिया है। उनसे भी भगवान जी के बारें में अमूल्य जानकारी मिली है। भगवान जी में आस्था रखने वाले कई लोगों से सम्बंद्ध जानकारी हमारे पास है। इन लोगों को भगवान जी के भौतिक जीवन और उनके महानिर्वाण के बाद कई असाधारण अनुभव हुये। भगवान जी ने कश्मीर के बाहर पांव भी नहीं रखा पर फिर भी वे कालजयी और सर्वव्यापक है। बृहदारण्यक उपनिषद में ठीक ही कहा गया है, "देवता सदा ही वहां क्रीड़ा करते हैं जहां सरोबर हों, जहां कमल के पत्तों के छत्र सूर्य की किरणों को रोकते हों, जहां निर्मल जल पर मार्गो का निर्माण करते हों हंस, जिनके वक्ष रह रहकर श्वेत कमलों से टकराते हों, जहां हंसो, बतखों, जल पाखियों इत्यादि की ध्वनियां कानों में मधुरता घोलती हों और पशु पास ही नदी तटों पर वृक्षों की छाया में विश्राम करते हों।" अत: उनका काश्मीर में जीवन भर रहना कोई आश्चर्य नहीं।

जात पात के भेदभाव का उनके लिये कोई अर्थ नहीं था। उनकी विश्व दृष्टि का केन्द्र पूरा मानव समाज था और वे जानते थे कि आध्यात्मिक शून्य ही वर्तमान समस्याओं की जड़ है। इसलिये उनके पास हर दर्द की दवा थी। जो कोई भी सच्चे मन से उन्हें याद करता था या उनका दरवाज़ा खटखटाता था उसका उद्धार हो ही

जाता था। कुछ लोगों को यह बात अजीब लग सकती हैं परन्तु यह कहना उचित होगा कि हमारी मातृभूमि पर जब भी शत्रु ने आक्रमण किया भगवान जी ने देश की सीमाओं की रक्षा की जिम्मेदारी संभाल ली। रणनीति तैयार करने और प्रभावशाली आक्रमण करने में उन्होंने सेना का मार्गदर्शन किया।

इसलिये जब मुझसे उनकी जीवनी लिखने को कहा गया तो मैं एकदम से कोई फैसला न कर पाया। ऐसे महात्मा, ऐसे सिद्ध पुरूष के विषय में लिखना संभव है क्या? कोई है ऐसा इस संसार में जो एक एक करके तारे गिन सके? जो उस अखंड, अनंत, और अनादि से एकाकार है और स्वयं भी अखंड, अनंत और अनादि है उसके विषय में लिखना कहां से आरम्भ करूं और कहां अंत करूं उसका? असीम को कुछ शब्दों में सीमित कैसे करूं? एक पल को लगा कि नहीं मुझसे नही होगा। परन्तु सौन्दर्य लहरी का एक श्लोक मेरे मन में कौंध गया जिसमें शंकराचार्य स्वीकार करते हैं कि मां भगवती स्वयं ही अपने गुणों, सौंदर्य और विशेषणों का वर्णन करती हैं। किसी और के लिये इनका वर्णन करना तो असम्भव है। वे कहते हैं, कि यह तुम्हारी ही स्तुति है और यह तुम्हारे ही शब्दों से 'शोभित' है।

त्वदीया भिर्वग्भिस्तव
जननी वचं स्तुतिरियम्

मैंने सोचा कि मैं क्या लिखूंगा भगवान जी के बारे में? वे स्वयं ही लिखेंगे अपने बारे में, अपना वर्णन करेंगे ओर मुझसे जो करवाना चाहेंगे, जो रहस्य खुलावाना चाहेंगे, सब वे ही करवा लेंगे। मैं तो निमित्त मात्र हूं, एक साधन, केवल एक उपकरण हूं। मुझे तो केवल प्रार्थना करनी है, निरन्तर आनन्द और मन की स्थिरता के लिये जिससे कि उनकी इच्छानुसार कार्य पूर्ण हो सके। मैंने एकदम से इस पवित्र कार्य को करना

स्वीकार कर लिया और भगवान गोपीनाथ जी फाउंडेशन के सदस्यों से आवश्यक सामग्री और प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराने का निवेदन किया। इसलिये 'कॉशुर समाचार' और 'प्रकाश भगवान गोपीनाथ' में भक्तजनों को संबोधित एक अपील छापी गई जिसमें उनसे भगवान जी से जुड़े प्रामाणिक अनुभवों और अन्य जानकारियों के बारे में लिखकर भेजने की प्रार्थना की गई थी। बहुत सारे भक्तजनों ने जानकारियां और अनुभव लिखकर भेजे। कुछ ने व्यक्तिगत तौर पर आकर अपने अनुभव सुनाये। कुछ ने नाम न छापने की शर्त पर जानकारी दी और कुछ को नाम छापे जाने पर कोई आपत्ति न थी। बहुत सारी घटनाएं और अनुभव थे। कुछ लोगों ने जो अनुभव बताये अन्य लोगों ने उनकी पुष्टि की। लोगों ने अपनी – अपनी समझ और अनुभव के आधार पर भगवान जी के बारे में बहुत कुछ बताया। मूलभूत जानकारी श्री फोतेदार की लिखी हुई जीवनी से ही मिली है। इस जानकारी में प्रोफेसर जे.एन. शर्मा और बी. एन. हण्डू उपकारी जी के लेखों से तो वृद्धि हुई ही है, श्री प्राणनाथ कौल ने जिस सूक्ष्मता से भगवान जी का विस्तृत और जीवंत वर्णन किया उससे इस ग्रन्थ में संगृहीत तथ्यों को वास्तविकता का एक ठोस आधार मिला है। श्री कौल भगवान जी के काफी निकट रहे और उनकी आत्मा की पवित्रता और व्यक्तित्त्व की सरलता बरबस ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

1968 में भगवान जी के निर्वाण के बाद उनके सूक्ष्म शरीर के माध्यम से कई भक्तों को अनेक अनुभव हुये। इन भक्तों ने अपने अनुभवों की विस्तृत जानकारी दी। इस संदर्भ में आस्ट्रेलिया के फिलिप सिम्फेनडॉर्फर, स्विटज़रलैंड के अवतार तिक्कू, न्यायमूर्ति एस.एन. काटजू, पत्रकार बी.एल. काक और संगीतकार दिलीप लंगू के नाम उल्लेखनीय हैं।

भगवान जी के कुछ निकट सम्बन्धियों ने भी उनके जीवन के बारें में काफी कुछ बताया। यह प्राण नाथ जी के कारण ही सम्भव हुआ जो ग्रन्थ लेखन के दौरान उत्साह और प्रेरणा के अमूल्य स्रोत रहे। ये सभी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के लेखन में उपयोगी सिद्ध हुई। पर कुछ महत्वपूर्ण मामलों पर मतभेद भी रहे। भगवान जी के गुरु को लेकर कई भक्त और विद्वान एकमत नहीं हैं। उनकी साधना पद्धति को लेकर भी कई मत हैं। परन्तु साक्ष्य दो प्रकार के होते हैं- बाह्य साक्ष्य और अंत:साक्ष्य। चूंकि बाह्य साक्ष्यों को लेकर विवाद हैं इसलिए मुझे अंत:साक्ष्यों का ही सहारा लेना पड़ा है। मेरे निष्कर्षो से लोग सहमत न भी हों तो मुझे नहीं लगता कि कोई विवाद उठ खड़ा होगा क्योंकि हम तो भगवान जी को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनका संदेश समझने और सांसारिक और आध्यात्मिक स्तरों पर लाभान्वित होने का प्रयत्न कर रहे है। इसलिये उनका गुरु कौन है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता और इतना तो निश्चित है ही कि सत्य के अन्वेषण के लिये जो साधना पद्धति उन्होंने अपनाई और उसका परिष्कार किया उससे वे आध्यात्मिकता के उस उच्चतम बिन्दु पर पहुंचे जहां परम तत्व से एकात्मक होने के कारण जन्म और मृत्यु अर्थहीन हो जाते है।

इतना समझ लेने के बाद मेरी हिचकिचाहट जाती रही। मुझे एक श्लोक याद आया,

"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंगयते गिरिम्

यत्कृपा तं अहं वंदे, परमानन्द माधवम्

(जिसके अनुग्रह से मिलती है गूंगों को भी वाणी और अपंग लांघ जाते हैं ऊंची पर्वत मालायें, उस माधव का परमानन्द का नमन करूं मैं।)

मुझे पूरा विश्वास था कि उनकी अनुकंपा से मेरे संकल्प को दृढ़ता मिलेगी और मेरी लेखनी को वे अपनी ही कथा लिखने के लिये प्रेरित करेंगे। विश्व भर के सामने स्पष्ट हो जाएगा कि आध्यात्मिकता के उच्चतम स्तर पर पहुंचने वाले दिव्य पुरुष कैसे होते हैं। इससे संसार भर को प्रेरणा मिलेगी और शांति और सहजता से परिपूर्ण विश्व की रचना हो सकेगी।

मुझे लगा कि भगवान जी के जीवन और उपदेशों को भारत की आध्यात्मिक परम्परा से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिये। हमारे यहां संतों और महात्माओं की लम्बी परम्परा है। कुछ ने अपने पीछे पवित्रता के अनुकरणीय उदाहरण छोड़े हैं और कुछ ने विशाल साहित्य और धर्मग्रन्थों की अर्थपूर्ण टीकायें। कुछ ने ज्ञान और दर्शन से भरपूर कविताओं की रचना की। कई संतों के बहुत सारे शिष्य रहे और कुछ अकेले रहना ही पसन्द करते थे। अधिकतर संतों से जुड़ी रहस्यमय कथाएं मौखिक परम्परा से हमारे पास पहुंची हैं। इनमें से कुछ को लेकर ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। जो या तो इन संतों के समकालीनों ने लिखे या उन लोगों ने जिन्हें अपने बुजुर्गों या अन्य स्रोतों से इन संतों के बारे में पता चला। मैंने सोचा कि इस जीवनी में इन सभी को इस सीमा तक तो स्थान मिलना ही चाहिये कि भगवान जी का जीवन और उपदशे हमारे सामने स्पष्ट हो और उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखने में मदद मिल सके। उन्होंने तो कश्यप ऋषि द्वारा स्थापित तपोवन कश्मीर में संतों की परम्परा को आगे बढ़ाया है। इस ग्रन्थ के साथ तभी न्याय हो सकता था जब मैं पूरा ध्यान केन्द्रित करके, स्थिर और शांत मन से इस कार्य में जुट जाऊं। मुझे डैग हैमर शोल्ड की पंक्तियाँ याद आ गईं, "जब हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व ही स्थिरता की स्थिति में पहुंच जाता है तो हम एक ऐसे संसार का

साक्षात्कार करते हैं जहां सभी वस्तुयें स्थिर और शांत हैं और तब एक वृक्ष भी रहस्यमय हो जाता है, एक बादल में भी रहस्य की कई परतें खुलने लगती हैं और एक ऐसा ब्रह्मांड हमारे सामने आ जाता है जिसकी आंतरिक समृद्धि का आभास मात्र ही हमें मिल पाता है।" भगवान जी के बारे में लिखतें समय मैं इन्ही रहस्यों में ब्रह्मांड की इसी समृद्धि का आभास प्राप्त करना चाहता था। मेरे लिये यह अनुभूति ही महत्वपूर्ण थी। इसके लिये मुझे हर समय स्वयं के साथ जुड़कर स्थिर और शांत रहना था।

स्पष्ट था कि परमात्मा के बारें में एक पश्चिमी विचारक का नीचे दिया गया वक्तव्य इस स्थिति में भी बिलकुल सटीक बैठता था। मुझे एक रहस्यमय सिद्ध पुरूष के बारे में लिखना था ज़ो यदि पूर्ण अवतार नहीं तो, अंशावतार तो थे ही। दिव्य पुरूष की सोलहों कलायें उनके पास थीं। उस पश्चिमी विचारक ने कहा है, "परमात्मा यदि स्वयं को प्रकट ही न करें तो कुछ ही लोगों को उसका अनुभव प्राप्त हो सकता है। कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा नहीं होता कि वे अपने विवेक का प्रयोग करके परम सत्ता का अनुभव प्राप्त कर सकें। हर आदमी दार्शनिक नहीं हो सकता। कुछ लोग रोज़ी रोटी कमाने में इतने व्यस्त होते हैं कि उनके पास परम सत्ता को लेकर चिंतन करने का समय ही नहीं होता। कुछ इतने आलसी होते हैं कि भगवान तक पहुंचने के बारें में सोचना भी उन्हें बोझ लगता है। अपनी बौद्धिक क्षमताओं, अपनी प्रज्ञा को साधना आसान भी नहीं होती। हमारी मानसिक क्षमताएं सीमित हैं और हमसे गलतियां होती रहती हैं। अनजाने मे हम अपनी भ्रांतियों के शिकार हो सकते हैं।" मुझे लग रहा था कि यदि भगवान जी स्वयं को प्रकट नहीं करते हैं तो उनके जीवन और संदेश के विषय में लिखना असम्भव ही होगा। इसलिये उनके आशीर्वाद के लिए मैं हर समय

प्रार्थना करता रहता था। भगवान जी ने अपने समय में जो कहा और किया उसकी तुलना उनके पूर्ववर्ती संतों की कथनी और करनी से की जा सकती है, भगवान जी के उपदेशों और हमारें शास्त्रों ओर आध्यात्मिक ग्रन्थों में दिये गये दार्शनिक तत्वों और निर्देशों में समानताएं हैं। इन समानताओं की ओर ध्यान देना आवश्यक था क्योंकि वेदों में कहा गया हैं - "एकं सत विप्रा: बहुधा वदन्ति" अर्थात सत्य एक है परन्तु विद्धान लोग उसे अलग-अलग ढंग से बताते हैं। युधिष्ठिर ने धर्म और सार्व भौमिक सत्य के विषय में यों कहा है, "श्रुतिर्विभिन्न: स्मृतिर्विभिन्न: धर्मस्य तत्वं निहितं गुहयायां महाजनोयेन गत: स: पन्थ:", अर्थात श्रुतियों ओर स्मृतियों में धर्म की विभिन्न व्यारव्यायें की गई हैं पर धर्म का सार तो बहुत गहरा है इसलिये गुणियों और महात्माओं के पथ पर चलना सर्वोत्तम है।

भगवान जी की जीवनी लिखने का यह अवसर प्रदान करने के लिये मैं फाउडेशन का आभारी हूं। मेरे लिये यह कई स्तरों पर महत्वपूर्ण था। मुझे भगवान जी के भौतिक स्वरूप को देखने का सौभाग्य तो मिला नहीं था। इस ग्रन्थ के लेख्न के दौरान मैं उनके जीवन और उनकी आध्यात्मिकता का गहराई से अवलोकन कर सकता था। उससे जुड़े साहित्य का अध्ययन करने का भी अपना ही सुख था। यह ज्ञान का एक अद्भुत स्रोत था जिसपर चिन्तन करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ और स्वयं मेरे ही आध्यात्मिक उत्थान का पथ प्रशस्त हुआ। उनसे जुड़े सभी अनुभवों के विषय में जानना, अपने आप में ही एक अमूल्य अनुभव था। कौन और कैसे थे वे लोग जो उनके बहुत निकट रहे, कौन सौभाग्यशाली थे वे जिन्हें उनकी सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ, कैसे अनुभव थे उनके जिन्हें भगवान जी का अनुग्रह प्राप्त हुआ और

किस-किस को उन्होंने सूक्ष्म रूप में दर्शन दिए? मैं उन सबके सामने नतमस्तक हूं। मैं उन लोगों को भी पूरी श्रद्धा से प्रणाम करता हूं, जो उनके नामपर मानवता की सेवा करने में जुटे हुये हैं। सेवाभाव, सौहार्द, ज्ञान और विचार का यह दीप सदा ही प्रज्जवलित रहे और इसकी अमर ज्योति से असंख्य दीप प्रज्जवलित होते रहें। भगवान जी के सभी भक्त आपसी स्नेह ओर सौहार्द के साथ एक आध्यात्मिक परिवार के रूप में रहें। हर लम्बी यात्रा के लिये पहला कदम तो उठाना ही पड़ता है। यदि मेरा यह छोटा से प्रयास उन्हें यह पहला कदम उठाने के लिये प्रेरित करता है तो मेरा परिश्रम ही नही जीवन भी सार्थक होगा।

मैं इस महादेश के संतों और महात्माओं के बारें में बहुत अधिक जानने का दावा नहीं करता। भक्ति आंदोलन के संतों के जीवन चरितों और उपदेशों का थोड़ा बहुत अध्ययन मैंने किया है। चैतन्य महाप्रभु और गुरूनानक देव जी में अलग-अलग दिशाओं में रहते हुये भी कितनी समानता थी, यह मैं ही नहीं सभी समझ सकते हैं। सूरदास से लेकर तुलसीदास और मीरा से लेकर रसखान तक भक्तिकाल की सम्पूर्ण कविता ही काव्य सौन्दर्य और आध्यात्मिकता का अनुपम उदाहरण हैं। हर कश्मीरी की तरह मुझे भी ललद्यद के 'वाखों', नुंद ऋषि के 'श्रुकों' और रूपभवानी के रहस्योपदेश का पता हैं। मैंने शम्स फक़ीर, स्वच्छ क्राल, न्याम साहब, वाहब खार, शाह गफूर और दूसरे सूफी शायरों का रहस्यवादी आध्यात्मिक काव्य तो पढ़ा ही है, परमानन्द, कृष्ण जू राज़दान और प्रकाश राम की कविता भी मुझे आकर्षित करती रही हैं। बचपन से मैंने कृष्ण कार, ऋषि पीर, मीशा साहब जैसे महान संतों के बारे में सुना था। छुटपन में ही मुझे कशकाक, मथुरा देवी, रहमान साहब, स्वामी लक्ष्मणजू आदि संतों से मिलने के अवसर प्राप्त हुये। संस्कृत का विद्यार्थी होने के नाते मैंने धर्मग्रन्थों

और महान ऋषियों के लिखे हुये दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया ओर उनको लेकर मेरी अंतर्दृष्टि भी विकसित होती चली गई। भगवदगीता में मेरी विशेष रूचि रही है और मैंने इसकी कई टीकाओं का अध्ययन किया है। यही पृष्ठभूमि भगवान गोपीनाथ को समझने में मेरी सहायक रही है। पाठक ही बता सकते हैं कि मेरे निष्कर्ष उनहें कितना संतुष्ट कर पाये हैं।

भगवान जी के बारे में लिखते-लिखते उनमें मेरी आस्था बढ़ती ही चली गई है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा हैं - "सिद्धानाम् कपिलो मुनिः", अर्थात सिद्धों में मैं कपिल मुनि हूं। यदि वे कभी और अवतार लेंगे तो निश्चय ही 'सिद्धानाम् गोपीनाथोहं' कहेंगे। इस ग्रन्थ को लिखते हुये उनकी कथनी और करनी का अध्ययन करने के बाद ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि 'भगवान चेतना' को विश्वभरमें फैलाने के संकल्प को दिनों दिन शक्ति मिलेगी। शीघ्र ही यह मानवता की सेवा में रत एक सार्वभौमिक आंदोलन का रूप ले लेगा। शांति, पवित्रता और विकास के पक्ष में खड़ी शक्तियां एकजुट होंगी ओर फूट डालने वाली विनाशकारी शक्तियों की हार होगी। भगवान जी का आशीर्वाद हमारे साथ है और वे निरन्तर हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।

धन्य हैं कश्मीर की पवित्र भूमि जिस के हर पर्वत, नदी-नाले और उपवन में संतों और महात्माओं की स्मृतियां बिखरी पड़ी हैं। जगह-जगह विष्णु, शिव और शक्ति को समर्पित तीर्थ-स्थल हैं। प्राचीनकाल में कश्मीर विद्यार्जन का गढ़ रहा है, और यहां के विद्धानों, ज्ञान के सभी क्षेत्रों से सम्बद्ध असाधारण ग्रन्थों और पवित्र एवं सरल जीवन शैली का पता पूरी दुनिया को है। यहां के लोग धार्मिक प्रवृत्ति के, स्वभाव

के नम्र और शांतिप्रिय रहे हैं। वे सहज ही संतों और महात्माओं की ओर आकर्षित होते हैं। मंदिरों और तीर्थस्थलों की यात्रा करना उनकी आदत हैं। धार्मिक महत्त्व के दिनों पर व्रत रखना, तहरी (हल्दी डाल कर बनाएं गये नमकीन चावल) और मीठी पूरियां बांटना, रात-रात भर जाग कर भजन और आरतियां उतारना, हारी पर्वत जैसे पवित्र तीर्थ की परिक्रमा करना और विभिन्न त्योहारों पर यज्ञ करना, इस सब से रहित जीवन की कल्पना एक आम कश्मीरी पंडित के लिये असम्भव है। इसलिये कश्मीर मे संतों और महात्माओं की लंबी परम्परा देखकर आश्चर्य नहीं होना चाहिये। सच पूछा जाये तो भगवान जी जैसे दिव्य पुरूष स्वेच्छा से इस धरती पर जन्म लेते हैं। भगवद्गीता को तो उन्होंने आत्मसात कर लिया था। इसमें कहा गया है कि जब व्यक्ति हर चीज़ को स्वयं में देखता है और स्वयं को हर वस्तु में देखता है तो इस एकात्मता की दृष्टि से ही दूसरों का सुखदुख भी अपना हो जाता हैं सहानुभूति की इसी भावना से प्रेरित होकर मनुष्य दूसरों के सुख में वृद्धि करने और दुःख में कमी करने के लिये प्रयत्नशील होता है। इसीलिये हमारे भगवान जी लोगों के दुखदर्द को कम करने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि आध्यात्मिकता से सभी समस्यायें सुलझ सकती हैं, और दृढ़ संकल्प, निरन्तर कर्मशीलता और ईश्वरीय अनुकम्पा से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। शंकराचार्य के विषय में लिखी गई डॉ. सुन्दरं की कुछ पंक्तियां भगवान जी पर बहुत सटीक बैठती हैं। वे लिखते हैं,

"शंकर तात्कालिकता की भावना से बात करते हैं। सत्य का अवलोकन और उसे आत्मसात करना जीवनकाल में ही होना चाहिय। बुद्धिमानी इसी में हैं कि अभी नहीं तो कभी नहीं। यही उनका 'जीवनमुक्ति' का आदर्श है। दूसरे शब्दों में वे चाहते

हैं कि प्रेम ओर एकता की भवनाएं इसी संसार में उत्पन्न हुई हैं और इन्ही से इस संसार को संचालित होना चाहिये। तत्त्वज्ञान के हवाई किले बनाकर कहीं न पहुंचाने वाले चिंतन से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं है। जीवन मुक्ति का कर्म तो तात्कालिक हैं और उसका व्यावहारिक होना बेहद ज़रूरी है। चीज़ों को अलग करने वाले अवरोधों से ऊपर उठना और अपने ज्ञान में सबका समावेश करने वाले परोपकार में रूपांतरित करना ही शंकराचार्य के संदेश की मूल चिंता है।"

भगवान जी के बारे में प्रामाणिक और प्रासंगिक जानकारी देकर जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस ग्रन्थ के लेखन में योगदान दिया उन सभी का मैं आभारी हूं। स्वर्गीय शंकरनाथ फोतेदार ने अपने गुरु के बारें में ग्रन्थ लिखकर हमारा जो उपकार किया है उसके लिये आभार शब्द बहुत छोटा लगता है। मैं उनके प्रति श्रद्धानत हूँ। जगदगुरु की यह जीवनी लिखकर मैं भी अपने श्रद्धासुमन ही अर्पित कर रहा हूं। असंख्य भक्त विश्व भर के आध्यात्मिक उत्थान और नैतिक विकास के भगवान जी के लक्ष्य को पूरा करने में जुटे हुये हैं। मैं भी उन्हीं में से एक हूं। अंत में मैं उन्ही शब्दों में भगवान जी को संबोधित करूंगा जिन शब्दों में आदि शंकराचार्य ने मां भगवती को संबोधित किया था।

"मेरा हर शब्द तुम्हारी प्रशंसा बने। हर क्रियाकलाप तुम्हारी पूजा बने, मेरा हर कदम तुम्हारी परिक्रमा में बढ़ें, अन्न ग्रहण करूं तो तुम्हें ही आहुति दूं, लेटूं तो साष्टांग प्रणाम हो तुम्हें और सब कुछ जो मैं करता हूं निरन्तर श्रद्धांजलि हो तुम्हारें लिये क्योंकि मैंने अपना सबकुछ तुम्हें समर्पित कर दिया है।"

इस ग्रन्थ को, जो बहुत सारे भक्तों के सम्मिलित प्रयास का परिणाम हैं, मैं पूरी श्रद्धा के साथ भगवान जी के चरणों में रख रहा हूं। "त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव

समर्पये"- हे गोविन्द, आपकी यह वस्तु आपको ही समर्पित की जा रही है! हे भगवन गोपीनाथ इस छोटे से ग्रन्थ को फूलों का एक गुच्छा समझकर ही स्वीकार कीजिये। हर अध्याय का हर अनुच्छेद इस प्रार्थना के बाद लिखा गया हैं कि भगवान जी का वरदहस्त बना रहे और लेखनी से वही निकले जो वे लिखवाना चाहते हैं। आशा है कि पाठक एक मूलभूत प्रश्न पर विचार करने के लिये प्रेरित होंगे कि 'मैं कौन हूं, कहां से आया हू और मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है?" मुझे पूरा विश्वास है कि वे भगवान चेतना का उच्च आध्यात्मिक स्तर प्राप्त कर लेंगे और उन्हे सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे। सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर उन्हें चिरस्थायी आनन्द की प्राप्ति होगी। हो सकता है कि इस प्रक्रिया में मुझे भी भगवान जी का अनुग्रह प्राप्त करने का सौभाग्य मिले।

त्रिलोकी नाथ धर 'कुन्दन'
सी-2/2बी, लारेंस रोड
दिल्ली - 110035



भगवान जी अपने भक्तों पर
अमृत बरसा रहे हैं

1

पृथ्वी पर भगवान पधारे

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

(हे अर्जुन! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब में स्वयं अपने आपको उत्पन्न करता हूं।)

अपने पुत्र नील के सुझाव पर, कठिन तपस्या करने के बाद, महर्षि कश्यप ने सतीसर का जल बहा दिया तो उनकी कामना थी कि कश्मीर एक ऐसी तपोभूमि बने जिसमें ऋषि मुनि निश्चिन्त होकर रह सकें। कश्मीर के हर पर्वत की चोटी दिव्य है, हर झरना पवित्र है और हर कोना एक तीर्थस्थल हैं इसके हर गांव और कस्बे में किसी न किसी सिद्ध पुरूष, किसी न किसी सन्त ने जन्म लिया है। इस पवित्र भूमि पर अनेक गृहस्थ साधुओं ने भी वास किया है। इनमें से कुछ ने भजनों और लीलाओं के रूप में रहस्यवादी भक्तिकाव्य की रचना की है और कुछ ने वाख और श्रुक जैसी चतुष्पदियों में अपना नैतिक और आध्यात्मिक संदेश दिया है। हिन्दू राजाओं के समय में वसुगुप्त, उत्पलदेव, सोमानन्द और अभिनवगुप्त जैसे महान विद्धान और सिद्धपुरूष हुये जिन्होंने अद्वैतवादी त्रिक दर्शन को विश्व के सामने रखा। उन्होंने मौलिक रचनाओं के साथ साथ संस्कृत में टीकाओं और प्रबंधों की रचना की जिसमें स्पन्द कारिका, शिवस्त्रोतावली, शिव दृष्टि, परमार्थसार और तन्त्रालोक जैसे ग्रन्थ आते हैं। चौदहवीं शताब्दी के बाद इस्लाम के आगमन के साथ ही ऐसे संत आगे आये जिन्होंने काव्य रचना और उपदेश देने के लिये कश्मीरी भाषा को माध्यम बनाया। इनमें ललद्यद तो कश्मीरी भाषा की आदि कवयित्री हैं उनके बाद नुंदऋषि, रूप

भवानी, परमानन्द, कृष्ण जू राज़दान आदि का नाम लिया जा सकता है। मुस्लिम सूफी कवियों में रहमान डार, शाह गफूर, वाज़ महमूद, शम्स फकीर, वाहब खार, न्याम साब और अहद ज़रगर का नाम लिया जा सकता है। सभी कश्मीरी इन सब की रचनाओं को पूरी श्रद्धा और भक्ति के साथ गाते हैं। कई संत ऐसे भी हुये है जिन्होंने कवितायें तो नहीं लिखी मगर कई लोगों को सही रास्ता दिखाया और पीड़ित मानवता को राहत पहुंचाई। कृष्ण कार, ऋषि पीर, सोन काक, जीवन शाह, नन्द बब, ग्रट बब आदि ऐसे ही संत थे। इन सभी सिद्ध पुरूषों के बीच एक अलग ही आभा, एक अलग ही दिव्य प्रकाश से मानवता के पथ को आलोकित करते हुये गोपीनाथ जी खड़े हैं। अपने जीवनकाल में ही वे जगदगुरु कहलाये।

श्रीनगर शहर वितस्ता नदी (जिसे झेलम भी कहते हैं) के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। वेरीनाग के सरोवर से निकलने वाली यह नदी कश्मीर घाटी की जीवन रेखा है। इसके स्रोत को कश्मीरी भाषा में 'व्यथवोतुर' कहते हैं और यह एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है। एक ज़माने में श्रीनगर में वितस्ता नदी के दोनों किनारे सात पुलों से जुड़े हुये थे। दूसरे और तीसरे पुल के बीच, दांए किनारे पर एक घनी आबादी वाला इलाका है जिसे भान मुहल्ला कहते हैं। इलाके का नाम भान परिवार के कारण रखा गया है जो यहां रहता था। श्री लक्ष्मण जू भान, जो डोगरा महाराजा के राजस्व विभाग में वज़ीरे वज़ारत (आज का कलक्टर) थे यही निवास करते थे। उनके सुपुत्र पंडित नारायण जू भान का विवाह पंडित प्रसाद जू पारिमू की सुपुत्री श्रीमती हार माल से हुआ था। इस दम्पति को 19 आषाढ़ 1955 (विक्रमी) अर्थात 3 जुलाई 1898 को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम गोपीनाथ रखा गया। यही पुत्र आगे चलकर जगदगुरु भगवान गोपीनाथ कहलाया। प्रो. चमन लाल सपरू कहते हैं कि भगवान जी

के जन्म पर स्वामी विवेकानन्द कश्मीर आये थे तो भगवान जी के परिवार से मिले थे। कुछ लोगों का कहना है कि स्वामी जी भगवान जी के घर के नीचे ही एक दर्ज़ी की दुकान पर आये थे। शायद स्वामी जी को पता था कि एक दिव्य पुरूष जन्म लेने वाला है। 1898 में ही लगभग उसी समय के आसपास चेल्टेन हैम (यू. के.) में रोनाल्ड निक्सन का जन्म हुआ जो 1921 में भारत आये। इसके बाद वे सन्यासी होकर यशोदा मां के शिष्य हो गये और कृष्णप्रेम वैरागी कहलाये। इससे दो वर्ष पहले 1896 में इस्ककॉन के संस्थापक भक्तिवेदान्त स्वामी का जन्म हुआ। आनन्दमयी मां भी इसी वर्ष संसार में आई जिन्हें ऋषिकेश के डिवाइन लाइफ सोसाइटी के स्वामी शिवानन्द सरस्वती ने 'भारतभूमि पर उत्पन्न पवित्रतम पुष्प' कहा है। स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक पर कुछ दिव्य प्रभाव था। भगवान जी का अवतरण भी इसी दशक में हुआ। उनके पिता पं. नारायण जू अत्यंत धर्मपरायण और आध्यात्मिक प्रवृति के थे। वे पश्मीने का कारोबार करते थे। फिर भी उन्हें धन-सम्पत्ति की लालसा छू नहीं पाई थी। भानमुहल्ला का हवेलीनुमा पुश्तैनी घर उन्हें पिता से विरासत में मिला था। पर उन्होंने वह घर और विरासत में मिली सारी चीजें अपनी सौतेली मां और उसके बच्चों को दे दीं। स्वयं वे अपने पूरे परिवार के साथ, भान मुहल्ला में ही पंडित शिवजी खैबरी के घर में रहने लगे। भगवान जी उस समय दस वर्ष के थे। पंडित नारायण जू के दो और पुत्र थे। बड़े वाले गोविन्द जू भान अविवाहित रहे। वे सीमाशुल्क एवं आबकारी विभाग में काम करते थे। 1946 में उनकी मृत्यु हुई। छोटे वाले पं. जियालाल, सत्थू बर्बरशाह के एक काक परिवार में गोद दे दिये गये थे। वे विवाहित थे पर उनकी कोई संतान न थी। वे लोकनिर्माण विभग में नक्शनवीस थे और 1964 में उनका स्वर्गवास हुआ। वे भी आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे और साधु संतों और गरीबों

की सेवा में लगे रहते थे। उनकी मृत्यु के समय भगवान जी ने कहा था कि शरीर तो उसे छोड़ना ही था क्योंकि आत्मा परमात्मा से मिली हुई थी। इसी से पता चलता है कि पं. जिया लाल भी उच्च कोटि के गृहस्थ साधु थे।

भगवान जी के नाना पं. प्रसाद जू पारिमू श्रीनगर के एक मोहल्ले सेकिडाफर में रहते थे। वे भी संत प्रवृति के थे। पं. प्रसाद जू पारिमू और जयनगरी के स्वामी आनंद जी दोनों एक ही गुरु के शिष्य थे। उन की आध्यात्मिक उत्कृष्टता को देखकर उन्हें पौराणिक ऋषि 'जड़ भरत' की संज्ञा दी गई थी। कहा जाता है कि आरम्भ में उनके कोई संतान न हुई। उन्होंने एक पुत्र गोद ले लिया जिसका नाम था माधव जू। इसके कुछ ही समय बाद जब वे तुलमुल (क्षीर भवानी तीर्थ) में सामाधिस्थ थे तो मां भगवती राज्ञा ने उन्हें दर्शन दिये! भगवती ने उन्हें डांटा कि वे तो स्वयं उनके घर में जन्म लेना चाहती थीं फिर पुत्र गोद लेने की क्या जरूरत थी। अन्तत: हारमाल का जन्म हुआ जिनकी कोख से भगवान जी को जन्म लेना था। यहां सत्रहवीं शताब्दी के महान संत पंडित माधव जू धर की याद आती हैं उन्होंने देवी मां शारिका से प्रार्थना की थी कि वे उन्हें अपने जैसी ही एक बेटी दें। देवी मां ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और अलखेश्वरी रूप भवानी के रूप में उनके घर में जन्म लिया। माता रूप भवानी ने, जो स्वयं मां शारिका ही थीं, 'रहस्योपदेश' के रूप में संसार को एक अमूल्य आध्यात्मिक निधि दी है।

श्री पारिमू की दो बेटियां और हुई–बदर द्यद और ज़पर द्यद। भगवान दास और दम काक नामक दो पुत्र भी हुये। उनके घर में सत्संग तो चलते ही रहते थे। प्रसाद जू ने अपनी छोटी पुत्री जपर द्यद को 'जप योग' की दीक्षा दी जिसके फलस्वरूप पचास वर्ष की आयु तक पहुंचते पहुंचते वे एक संत के रूप में प्रसिद्ध हो

गई। प्रसाद जू के पुत्र भगवान दास भगवती शारिका के भक्त थे और हर रोज़ हारी पर्वत की परिक्रमा करने के लिये जाते थे। योग वासिष्ठ का पाठ तो उस घर में नियमित होता था। हारी पर्वत के नीचे काठी दरवाज़े के पास ही 'पोखरिबल' का तीर्थ है। भगवानदास हर दिन वहां भी जाते थे ओर सूर्योदय तक घर लौट आते थे। पोखरिबल में पानी का जो कुण्ड था उसकी गाद साल में एक दो बार निकालनी पड़ती थी। युवा गोपीनाथ इस काम को बड़े मनोयोग से करते थे। वे पानी में उतरकर सारी गाद, मिट्टी, सड़े हुये फूल ओर चढ़ावे की अन्य वस्तुयें निकाल लाते थे ओर पानी साफ सुथरा हो जता था। इस पवित्र तीर्थ के वार्षिक यज्ञ में भी वे मौजूद रहते थे। इसी से पता चलता है कि आध्यात्मिकता और धर्मपरायणता के बीज उनके मन में बचपन से ही पड़ गये थे।

कैसी अद्भुत विरासत थी। ननिहाल की तरफ से उन्हें धार्मिक अनुशासन, योगिक क्रियाओं और आध्यात्मिकता का वातावरण मिला। उनकी मां तो भगवती राज्ञा की अवतार ही थीं, उनके दादा, बुआ और मामा दीक्षित संत थे। पिता तो धर्म परायण थे ही और आध्यात्मिकता का उच्च स्तर उन्होंने प्राप्त कर लिया था। बड़े भाई आजीवन ब्रह्मचारी रहे और छोटा भाई साधु संतों की सेवा में लगा रहता था।

ऐसा माहौल मिला तो भगवान जी सहज ही छोटी आयु से ही धर्मसाधना में लग गये। इसी में उन्हें आनन्द आने लगा और घर बसाने जैसे सांसारिक कार्यों का कोई महत्त्व न रहा। सांसारिकता से वे कोसों दूर हो गये। यहां तक कि अन्न, वस्त्र और सुविधा के अन्य साधनों पर ध्यान देना भी उन्होंने बंद कर दिया। दिखावा उन्होंने कभी नहीं किया। वे मौन और गुप्त साधक थे। बहुत कम बोलते थे और वह भी फुसफुसाकर। बाहर से तो लगता था कि इस संसार में हैं पर अंदर ही अंदर अपने

आध्यात्मिक अंतर्जगत में विचरण करते रहते थे। वे स्पष्ट शब्दों में बात नहीं करते थे। उनकी बातों का अर्थ निकालना पड़ता था। कभी-कभी तो केवल इशारों से ही काम चला लेते थे।

भगवान जी की दो बहने थीं। उनसे बड़ी बहन का नाम था देवमाली। उन्होंने दो पुत्रियों को जन्म दिया और छोटी उमर में ही विधवा हो गई। विधि का विधान! सम्भवत: उन्हें अपने परिवार की चिन्ताओं से इस लिये मुक्त रखा गया कि वह भगवान जी की देखभाल कर सकें। भगवान जी कठिन साधना कर रहे थे तो देवमाली ने ही उनकी देखभाल की। वे लगातार उनके खाने पीने, पहनने ओढ़ने का ध्यान रखती रहीं। भगवान जी के जीवन का ज़्यादातर हिस्सा मां जैसी इस बड़ी बहन के साथ ही बीता। देवमाली तीर्थयात्राओं पर उनके साथ जाती थी और अपने समय के बड़े-बड़े संतों से मिलने भगवान जी जाते थे तो वे भी साथ रहती थीं। देवामाली का स्वर्गवास 1965 में हुआ।

श्रीमती देवमाली की बड़ी पुत्री कमला जी का विवाह पं. श्याम लाल मल्ला से हुआ और उनके एक पुत्र और दो पुत्रियां हुई। श्रीनगर के चंदपुरा मुहल्ले में पं. श्याम लाल मल्ला के घर में ही भगवान जी ने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष बिताये और 1968 में यहीं अपना भौतिक शरीर त्याग दिया। श्रीमति देव माली की छोटी बेटी चांदाजी का विवाह पं. माधव जू सत्थू के साथ हुआ। 1956 में मल्ला परिवार में जाने से पहले भगवान जी ऋषि मुहल्ला में माधव जू सत्थू के घर में लगभग दस वर्ष रहे। भगवान जी की छोटी बहन श्रीमती जानकी देवी थीं। उनके दो बेटे और दो बेटियां थीं। उन्होंने भी अपने भाई की बहुत सेवा की। उनका देहान्त 1990 ई. के पश्चात् जम्मू में हुआ। किसी दूसरे के मकान में रहने को कश्मीर में 'वांगुज वोर' कहा जाता

है। यह किराए का मकान भी हो सकता था और यदि किसी आत्मीय का घर हो तो वहां किराया नहीं देना पड़ता था। ऐसे ही वांगुज वोर के मकान बदलते बदलते, निकट संबंधियों की मृत्यु देखते देखते गोपीनाथ नाम के इस छोटे लड़के को लगा कि यह संसार तो कुछ भी नहीं है। आवश्यकता तो है उस परम तत्त्व, उस परम सत्य की खोज और इसके लिये कर्म करना होगा।

गोपीनाथ अंतर्मुखी होता चला गया। जब लड़के में खुलापन ही न हो, वह बात ही न करे तो कोई क्या समझे। संत जैसा कुछ तो किसी को लगा ही नहीं परन्तु साधना के बीज तो उनमें थे ही जो सांसारिक उतार चढ़ावों से अंकुरित हो गये और यह लड़का संत बनने के रास्ते पर चल पड़ा। इसमें पिछले जन्मों के संचित पुण्यों और साधना का योग दान तो था ही, नहीं तो सांसारिक उतार चढ़ावों से दुखी होकर वे पलायनवादी भी हो सकते थे।

भगवान जी के पिता अपना पुश्तैनी घर छोड़कर पंडित शिव जी खैबरी के घर में रहने चले गये। उस समय भगवान जी दस बरस के थे। पूरा परिवार लगभग डेढ़ बरस वहां रहा। 1909 में शालायार में पं. केशव जू नगरी के घर में रहने चले गये। यहां वे तीन बरस तक रहे। उन दिनों गोपीनाथ स्कूल जाने वाला एक लड़का था। उसने मिडल की परीक्षा पास की जो उन दिनों बहुत अच्छा माना जाता था। वह बारह बरस का था, तो मां चल बसी। 1912 में परिवार राजोरी कदल में पं. कैलाश जू भान के घर में रहने चला गया। इस दौरान भगवान जी ने कुछ दिन अपने मामा के साथ पश्मीना ऊन का कारोबार किया। इसके बाद उन्होंने विशनाथ प्रिटिंग प्रेस में कंपोजीटर की नौकरी कर ली। इस बीच परिवार सेकिडाफर में उनके नाना के घर रहने चला गया। यहां रहने पर उनके आध्यात्मिक क्रिया कलाप बढ़ गये लगते हैं। पहले वे संत जन काक के पास

जाते थे और अब जटा धारी संत बालक काव के पास जाने लगे जिन्हें लोग प्यार से बाल जी कहते थे। सेकिडाफर में भगवान जी का परिवार सात बरस रहा। विशनाथ प्रेस में तीन बरस काम करने के बाद उन्होंने 'चायि द्वब' नामक स्थान पर पंसारी की दुकान खोल ली। 1920 में उनका परिवार सफा कदल में पं. केशवजू धर के मकान में रहने चला गया। भगवान जी ने अपने किरयाने की दुकान सेकिडाफर ही स्थानांतरित कर दी। अपने युवा मित्रों की टोली बनाकर और उसका नेतृत्व करते उन्होंने तुलमुल, विचारनाग और महादेव जैसे तीर्थों की यात्राओं का आयोजन किया। संतों के दर्शन करना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। संतों से साक्षात्कार करते हुये वे एक साधक के रूप में अनुभव की जाने वाली समस्याओं और उनके समाधान के बारे में तो बात करते ही होंगे। पर संतों से उनकी गुप्त मंत्रणाओं के बारें में कोई कुछ नहीं बता सकता। इनकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

कश्मीर के अधिकांश संतों की तरह भगवान जी ने भी एक सामान्य से घर में जन्म लिया। किन्तु कीचड़ में ही कमल खिलता है।

काश्मीर में इस प्रकार के संतों की एक ज्वलंत परम्परा रही है जिनमें स्त्री और पुरूष दोनों ही हैं। चौदहवीं शताब्दी में लल द्यद थीं जिनके वाख हर किसी की ज़बान पर हैं। 18वीं शती में श्री रूप भवानी हुई है, जो शारिका की अंशरूपा थी। कृष्ण कार जैसे संत हुये हैं जो ऋषि पीर के गुरु थे। ऋषि पीर को 'पीर पंडित बादशाह, मुश्किल कुशां हर दु जहां' कहा जाता था अर्थात वह इह लोक और परलोक दोनों में सहायक थे।

सम सामयिक ऋषियों की भी कमी नहीं है। कश काक, नंद बब, ग्रट मोत, मथुरादेवी, सती द्यद आदि कितने ही ज्वलंत सितारे हुये हैं। कश्मीर शैव दर्शन की

परम्परा में वसुगुप्त, उत्पलदेव, सोमानंद, अभिनव गुप्त, स्वामी राम, महताब काक, स्वामी लक्ष्मण जु जैसे संतो का शुभ नाम आता है जिन्होंने त्रिक शास्त्र के सम्बंध में अनमोल साहित्य की रचना की है। यह दर्शन मूलत: अद्वैत दर्शन है जो सृष्टि और सृष्टा दोनों को वास्तविक मानता है। उनका मानना है कि ईश्वर ही जगत के रूप में प्रकट होता है अत: जगत मिथ्या नहीं हो सकता। जीव को 36 तत्वों में से गुज़र कर आत्मानुभूति को प्राप्त करना होता है जहां जीव का परम तत्व के साथ मिलन हो जाता है। ईश्वर की अवधारना चेतना के रूप में की गई है। कश्मीर भूमि भगवान गोपीनाथ जैसे संतों की उर्वरा जन्मस्थली रही है। मामूली से घर में जन्म लेकर भी वे बेशुमार लोगों का सहारा बने और जगदगुरु कहलाये। उनके शिष्य उन्हें 'बब' कहते थे जिसका अर्थ होता हैं स्नेही पिता। कुछ 'बब भगवान' कहते थे अर्थात भगवान जो पिता हैं। अभी भी अपने सूक्ष्म रूप में वे संसार के कई स्थानों पर भक्तों की सहायता करते हैं ओर उनके दु:खों का निदान करते हैं। उनका अवतरण दिवस और निर्वाण दिवस पूरे दशे में और देश से बाहर भी श्रद्धा से मनाया जाता है। उनके चित्रों में भी उनकी असाधारणता दिखाई देती है।

भगवान जी सूर्य से देदीप्यमानऔर चंद्रमा से शीतल हैं। उनमें सागर की गहराई और आकाश का विस्तार हैं। वह प्रात: के ओस कणों जैसे चिर नूतन हैं। वे बृहत काय पेड़ की तरह सब को आश्रय देते है, सबसे पहले ध्यान आकर्षित करती हैं उनकी आंखें। आप उनकी आंखों में देखिये। आप उनमें डूबते चले जायेगें। आपको लगेगा कि वे आपके अंदर तक देख रही हैं। उनके अधखुले होंठ कुछ कहने को तैयार हैं। ऐसा लगता है कि आप उनकी दिव्य वाणी बस अभी, बिल्कुल अभी सुन

लेंगे। उनका रंगधार फिरन और उनकी सफेद पगड़ी उनकी सरलता और उनकी पवित्रता की अभिव्यक्ति करते हैं। आपको लगता है कि उनके दिव्य व्यक्तित्त्व की आभा वातावरण में बिखर रही है और आप अन्दर तक शांत हो गये हैं। उनके माथे पर लगा सिंदूर का बड़ा सा तिलक लोगों को हारी पर्वत की शारिका शिला की याद दिला देता है। इस अभूतपूर्व संत ने कभी नहीं चाहा कि उसका नाम हो या उसे प्रसिद्धि मिले। भगवान जी ने तो जगत का उद्धार करने के लिये जन्म लिया था, न केवल स्वयं सत्य की प्राप्ति के लिये अपितु वे ऐसा एक ध्रुव तारा है जिसने कई एक भक्तों की जीवन नैया को पार लगाया तथा अभी भी पार लगा रहे है। डॉ. राधाकृष्णन ने ऐसे ही संतों के बारे मे लिखा है, "जान कर अच्छा लगता है कि प्राचीन विचारक चाहते थे कि हम एकाकीपन और मौन में आत्मा की संभावनाओं का अनुभव करें और अपनी अंतर्दृष्टि के टिमटिमाते क्षीण होते पलों को ऐसे स्थिर प्रकाश में परिवर्तित करें जो हमारी लंबी आयु को आलोकित करता रहे।" भगवान जी ने यह स्थिर प्रकाश प्राप्त कर लिया था और वे इच्छानुसार परम तत्त्व से सम्पर्क कर सकते थे। साधना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। इसीलिये शायद उन्होंने विवाह नहीं किया क्योंकि हो सकता है, विवाह साधना में बाधक हो। हमारे पास कई संतों के उदाहरण है जिन्होंने इसी कारण से विवाह नहीं किया और किया भी तो माता पिता के दबाव के कारण। बाद मे जब उनके परिवार उपेक्षित महसूस करने लगे तो इन संतों को बहुत दुःख हुआ। चौदहवीं शताब्दी के संत नुंद ऋषि को विवाह करने के लिये मजबूर कर दिया गया। उनके दो बच्चे हुये। उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई और वे कठिन तपस्या करने के लिए एक गुफा में चले गये। बच्चों को पालने का बोझ उनकी बूढ़ी मां पर पड़ा। मां ने नुंद ऋषि के पास जाकर कहा कि उन्हें इस जिम्मेदारी से मुक्ति दिला दें। नुंद

ऋषि ने आकाश की ओर देखकर परमात्मा से प्रार्थना की कि इन बच्चों को अपने पास ले जायें क्योंकि गृहस्थ धर्म उनके लिये नहीं है। तुरंत ही बच्चों की मृत्यु हो गई और ऋषि की साधना का विघ्न समाप्त हो गया। ऐसी पीड़ाजनक स्थिति से बचने के लिये ही भगवान जी ने ब्रह्मचारी रहने का फैसला किया होगा। ब्रह्मचारियों से उन्हें खास लगाव था हालांकि गृहस्थों से भी वे बराबरी का व्यवहार करते थे। वे जानते थे कि हर कोई आध्यात्मिक ऊंचाइयों पर पहुंच सकता है मगर गृहस्थों को इसमें ज़्यादा कठिनाई होती है।

भगवान जी कोई सम्प्रदाय खड़ा करने में विश्वास नहीं रखते थे। वे प्रवचन या दार्शनिक व्याख्यान नहीं देते थे। सत्य का ज्ञान प्राप्त करना, लोगों के दुःख दूर करना और साधना के इच्छुकों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करना ही उनका उद्देश्य था। इसीलिये लोगों को उनमें कुछ भी असाधारण नहीं लगता था। बचपन में उन्होंने चमत्कार नहीं किये और दिव्य शक्तियों का प्रदर्शन नहीं किया। करते भी क्यों? उन्हें किसके सामने पद या रूतबा दिखाना था!

कश्मीर के हर घर में एक पूजा का कमरा हुआ करता था जिसे 'ठोकुर कुठ' कहा करते थे। उसमें रोज़ पूजा होती थी। इसमें स्फटिक का एक छोटा शिवलिंग, किरमिज़ी रंग का एक पत्थर जिसे सालिग्राम कहते थे, श्री राम पंचायतन को दर्शाने वाला एक सिक्का, गणेश और अन्य देवताओं के प्रतिरूप बड़ी श्रद्धा से रखे जाते थे। हर सुबह इन्हें धोकर चन्दन का टीका लगाया जाता था और रंगबिरंगे फूलों से सजाकर 'भक्ति स्तोत्र' पढ़े जाते थे। इसके अतिरिक्त कई तीर्थस्थलों पर भी लोकप्रिय 'स्तोत्रों' जैसे भवानी सहस्त्रनाम, इन्द्राक्षी, पंचस्तवी और षडक्षर व पंचाक्षर का पाठ होता था। लोग देवताअें की प्रशंसा में 'लीलाएं' और भजन भी गाते थे। ये

समूहगान हारमोनियम के साथ तबला और 'नोट' (कश्मीरी मटका) बजाकर गाये जाते थे।

एक औसत कश्मीरी परिवार इसी धार्मिक परिवेश में जीता था। भगवान जी के घर और ननिहाल में तो धार्मिक माहौल था ही। इसीलिये उन्हें उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धियां प्राप्त हो सकी। फिर उन्हें आम लोगों जैसी सुविधाओं से क्या मतलब होता! पोशाक भी वे आम कश्मीरी पंडितों जैसी ही पहनते थे। एक कमीज़, एक वास्कट, एक फिरन जिसमें अलग किया जा सकने वाला पोच्छ लगा रहता था और सर पर एक पगड़ी। सर्दियों में वे एक काला कम्बल कंधों पर डाल लेते थे और फिरन के अन्दर कांगड़ी ले लेते थे जब वे बड़े हुये तो चिलम पीने लगे और धूनी जलाने लगे। उन्हें अपनी में ही खोया हुआ देखकर उन्हें, 'मस्ताना' ही कहा जा सकता था। उनकी हरकतें देखकर यह कहना तो कठिन ही था कि वे उच्च कोटि के महात्मा हैं। यशोधा और नन्दराय को भी कहां पता था कि उनके आंगन में स्वयं नारायण खेल रहे हैं। उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि जिस बालक की किलकारियां उन्हें आनंदित करती हैं वह त्रिलोक का स्वामी है। इसी प्रकार भगवान जी की आध्यात्मिक अवस्था को आंकना भी किसी के बस में नहीं था। ऐसे महात्माओं और योगियों का जीवन ही विलक्षण होता है और उनका क्रियाकलाप भी आश्चर्य चकित करने वाला होता है।



तुल्लामुल्ला खीरभवानी
में आसन जमाये हुए

2
साधना के पथ पर

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिनमां वेत्ति तत्त्वतः।।

(हज़ारों मनुष्यों में कोई विरला ही सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है और उनमें भी कोई विरला साधक होता है जो मुझे वास्तविक रूप में जानता है)

भगवान जी का लालन पालन एक अत्यन्त धर्मपरायण परिवार में हुआ। घर से और ननिहाल से उन्हें जो संस्कार मिले और पूर्व जन्मों के जो संचित पुण्य थे उनसे उन्हें आध्यात्मिक आधार मिला और अपनी साधना से उन्होंने वह स्थिति प्राप्त कर ली जिसके लिये अधिकांश साधक तरसते हैं। उनकी रूचि धार्मिक कार्यों और सेवा में थी। वे तीर्थों पर जाना और संतों से मिलना पसंद करते थे। भगवद्गीता में भी कहा गया हैं - "अनेक जन्म संसिद्धः ततो यांति परांगतिम्" साधक कई जन्मों के बाद पूर्णता प्राप्त करता है और तब ही उसे उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त होती है। भगवान जी ने यह स्थिति प्राप्त कर ली थी और इसलिये वे अपने जीवन काल में ही परम तत्त्व से एकाकार हो पाये।

वे बहुत छोटे थे जब उनके कई निकट संबंधियों की मृत्यु हुई। इससे उन्हें संसार की नश्वरता का बोध हुआ ही होगा जिसने उन्हें परम तत्त्व के चिरस्थायी सत्य को जानने के लिये प्रेरित किया होगा। इसीलिये उनके कुछ विदेशी शिष्यों ने उनकी तुलना गौतम बुद्ध से की है। कवि सुभित्रानन्दन पंत ने उन्हें राम, कृष्ण और बुद्ध के समकक्ष रखा है। भगवान जी को लेकर लिखी गई उनकी कविता पुस्तक के अंत में

दी गई है। किसी ने बुद्ध से पूछा कि वे भगवान हैं या अवतार। बुद्ध ने कहा कि वे जागृत हैं। भगवान जी भी जागृत थे पर अंतर्मुखी होने के कारण बहुत ही कम बातचीत किया करते थे।

1923 में विजय सप्तमी के दिन वे शाली और पारिमू परिवारों के एक दल के साथ मट्टन तीर्थ की यात्रा पर गये। जब वे नाव से खनाबल पहुंचे तो भगवान जी संत जीवन शाह के यहां चले गये। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं जब वे संतों से मिलने या उनकी समाधियों पर गये। संतो से बातचीत करके उन्हें अपने लिय साधना का सही मार्ग चुनने में सहायता मिलती होगी। तीर्थ भी उन्हें आकर्षित करते थे क्योंकि वहां उन्हें साधना के लिये उपयुक्त शांत वातावरण मिल जाता था।

औपचारिक स्कूली शिक्षा उनकी आध्यात्मिक प्यास को शांत नहीं कर पाई। फिर भी उन्होंने चर्च मिश्नरी स्कूल, फतेहकदल में मिडल (8 वीं कक्षा) तक शिक्षा प्राप्त की। यह स्कूल नदी पार उनके घर के पास ही था। भगवान जी के सहपाठी पंडित विशनाथ कुकिलू और पंडित गाश लाल भान उनको साथ लेकर स्कूल के डाइविंग बोर्ड से बितस्ता नदी में कूद जाते थे और नदी के बहाव की दिशा में सातवें पुल सफा कदल से भी आगे वीर के बांध तक तैरकर जाते थे और फिर वापस आ जाते थे।

फारसी, संस्कृत और उर्दू पर भगवान जी को अच्छा अधिकार थ। देवनागरी और शारदा लिपियों का ज्ञान उन्हें था। उनके कई भक्तों का कहना है कि भावातिरेक में वे कई बार अंग्रेजी में भी सुन्दर वाक्य बोल जाते थे। यह भी कहा जाता है कि जब सुरक्षा परिषद में कश्मीर को लेकर चर्चा हो रही थी तो उनके मुंह से किसी अलग

ही भाषा में कुछ वाक्य निकले जो अंततः रूसी भाषा साबित हुई। यही वाक्य अगले दिन रूसी प्रतिनिधि ने पश्चिमी देशों द्वारा प्रायोजित प्रस्ताव को वीटो करते हुये बोले थे। यह प्रस्ताव भारतीय हितों के खिलाफ था। कहा जाता है, कि माता रूप भवानी की कृपा से उनका भतीजा फारसी भाषा पढ़ लिख लेता था हालांकि उसने औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। भगवान जी छुटपन से ही भवानी सहस्रनाम, इन्द्राक्षी, पञ्चस्तवी, विष्णु सहस्रनाम, महिम्नस्तोत्र और शिवस्तोत्रावली का पाठ किया करते थे। कभी-कभी कश्मीरी संतों के वाख भी सुनाया करते थे। भगवद्गीता की एक प्रति सदा ही उनके पास रहती थी और वे बड़ी श्रद्धा से उसका पाठ किया करते थे। बाद में वे इन धर्मग्रन्थों से पढ़े बिना ही एक दो श्लोकों का उदहरण दे देते थे। क्योंकि ये सब उन्हें अच्छी तरह से याद हो गये थे। पञ्चस्तवी का चौथा स्तव 'अम्बस्तव' तो उन्हें बहुत ही अच्छा लगता था। एक बार जब श्री एस.एन. बख्शी का परिचय उनसे पञ्चस्तवी के मधुर गायक के रूप मे कराया गया तो उन्होंने बख्शी साहब से चौथा स्तव गाकर सुनाने के लिये कहा। 'गुरुगीता' भी उन्हें बहुत अच्छी लगती थी। इससे साफ पता चलता है कि साधकों के लिये गुरु को वह कितना आवश्यक मानते थे। संतों और विद्धानों के साथ उनका सत्संग तो चलता ही रहता था। वेदान्त और शैव दर्शन में उनकी विशेष रूचि तो थी ही। अन्य साधन पद्धतियों पर भी वे विचार विमर्श किया करते थे। भक्ति और आत्मसाक्षात्कार की अलग-अलग पद्धतियों से उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता था। परमात्मा से एकाकार होने को ही वे साधक का उद्देश्य मानते थे। किसी साधु ने भगवान जी के एक शिष्य से कहा कि उसके गुरु को शास्त्रों का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। शिष्य जब भगवान जी के पास गया तो उन्होंने स्वतः बता दिया कि साधु ने उससे क्या कहा था। इस से उन्होंने साबित कर दिया कि ज्ञान पढ़ने और

शास्त्रों की तोता रटंत से नही आता बल्कि उसके लिये बोध, क्षमता, अंतर्दृष्टि और योग की आवश्यकता होती है, इससे स्पष्ट होता है कि उनके लिये शास्त्रों का कम और व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव का अधिक महत्त्व था। 'पंचदशी' के इस श्लोक में भी यही कहा गया है।

"अधीत्य चतुरो वेदान सर्वशास्त्राण्यनेकक्ष:
ब्रह्म तत्त्वं-न जानाति दर्वि सूपरसं यथा।"

(जैसे कड़छी को व्यंजन में रहते हुये भी उसका स्वाद नहीं मालूम होता, चारों वेद और सभी शास्त्र कई बार पढ़ने पर भी ब्रह्म को जानना संभव नहीं है। अर्थात् अंततः व्यक्तिगत अनुभव का ही महत्त्व होता है।)

विरक्त होने के कारण भगवान जी रोज़ी रोटी कमाने को महत्त्व नहीं देते थे। उनकी बड़ी बहन देवमाली परिवार की खराब आर्थिक स्थिति की ओर उनका ध्यान दिलाती तो वे यह कहकर टाल जाते कि सब कुछ परमात्मा के हाथों में है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भी कहते हैं, "तेषाम् नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।" अर्थात जो मुझसे अनवरत जुड़े हुये है उनको जो अप्राप्त है वह मुझसे ही प्राप्त होता है और प्राप्त की रक्षा भी मैं ही करता हूं।

रोज़ी रोटी कमाने के नाम पर भगवान जी ने जो कुछ किया उसमें विशनाथ प्रिंटिंग प्रेस में कंपाज़िटर की नौकरी करना भी आता है। कहा जाता है कि उनके काम शुरू करते ही प्रेस का काम काज बढ़ने लगा। उनके अनुसार यह पूर्व जन्म का लेनदेन था और तीन साल तक काम करके उन्होंने स्वयं को इससे मुक्त कर दिया। जब वे नौकरी छोड़ने लगे तो प्रेस के मालिक ने बहुत रोका मगर उन्हें रोकना कहां संभव था। एक दूसरे प्रेस ने उन्हें काम देना चाहा पर उन्होंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया।

किरयाने की दुकान की तो वहां भी चीज़े कम बेचीं, अपनी साधना की ओर ही अधिक ध्यान दिया। उन दिनों वे ध्यान मग्न ही दिखते थे। कभी-कभी वे कइ रातें तक दुकान में ही बैठकर साधना किया करते थे। भगवद्गीता में सन्यास को इच्छा संबंधी कर्मो के त्याग के रूप में परिभाषित किया गया है - "काम्यानां कर्मणां न्यासम्" और त्याग को सभी कर्मफलों के परित्याग के रूप में परिभाषित किया गया है। - "सर्व कर्मफल त्यागम्" इन परिभाषाओं के आधार पर भगवान जी सही अर्थो में सन्यासी और त्यागी साबित होते हैं। उनकी कोई इच्छायें ही नहीं थी तो इच्छा सम्बन्धी कर्म क्या करते ओर उनका पूरा जीवन साक्ष्य है कि कर्म फल की लालसा उन्हें थी ही नहीं।

लगता है कि वे पतञ्जलि के 'योग सूत्र' के निर्देशों के अनुसार चलते थे। वे पूरी निष्ठा से यम और नियम का पालन करते थे। 'आसन', 'धारणा' और 'ध्यान' से होते हुये वे समाधि अर्थात परमतत्त्व से एकाकार होने की स्थिति को प्राप्त करना चाहते थे।

'चिलम' तो उनके हाथ में रहती ही थी, कभी-कभी 'खोस' (कश्मीरी कांस्य पात्र) हाथ में लिये वे चाय पीना भूल जाते और अपने भीतर किसी अलग ही संसार में विचरण कर रहे होते। चिलम की चिंगारियां कभी-कभी उनके कपड़ों और होंठों तक को जला देती। खोस में चाय बिल्कुल ठंडी हो जाती। पर उन सबसे बेखबर वे भीतर ही भीतर जाने कहां कहां की कैसी कैसी यात्रायें कर रहे होते। उनके लिये आत्मा का ही महत्त्व था और यह भौतिक शरीर उसको ढोने का एक साधन था। रंगटेंग में पं. दीनानाथ बोटा के घर में जब भगवान जी के पिता का निधन हुआ तो संसार से उनका आखिरी नाता भी टूट गया। सबकुछ भूलकर वे साधना में जुट गये।

बाहरी दुनिया से उनका संपर्क कम से कम होता चला गया। लगता है वे भी लल द्यद के इस कथन पर विश्वास रखते थे कि "गवरन दोपनम अकुय वचुन, न्यब्र दोपनम अंदर अचुन" - मेरे गुरू ने मुझे एक ही सीख दी कि बाहर से भीतर जाओ। अपनी दुकान पर भी लोगों से कम ही बोलते थे और अपने में मगन रहते थे। कभी-कभी दुकान खुली छोड़कर हारी पर्वत चले जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि सांसारिकता से उन्हें कोई सरोकार नहीं था हालांकि परिस्थितियोंवश उन्हें परिवार पर ध्यान देना पड़ता था। पर यह उनका बाह्य कर्म ही था। संसार में रहते हुये भी भगवान जी को विभिन्न स्तोत्रों और धर्मग्रन्थों का ज्ञान तो था पर यह ज्ञान उन्होंने पढ़ कर प्राप्त किया था या योग साधना से, कहना कठिन हैं। वैसे उन जैसे महापुरूष के लिये असंभव तो कुछ भी नहीं था। माता रूप भवानी की कृपा से उनका भतीजा अशिक्षित होते हुये भी फारसी पढ़ लेता था। वाराणसी के एक संत अमृतवाग्भवाचारी बिना पढ़े ही कश्मीरी शैवदर्शन के बारे में जानते थे। कहते हैं ऋषि दुर्वासा ने उन्हें यह ज्ञान दिया था। कबीर ने भी कहा है, "तुम कहते हो कागद लेखी, मैं कहता हूं आंखन देखी"। भगवान जी गीता पढ़ते तो कभी देखे नहीं गये पर इस पवित्र ग्रन्थ की एक प्रति सदा ही अपने पास रखते थे। इसी से पता चलता है कि इसमें निहित ज्ञान को वे कितना महत्त्व देते थे। एक बार उन्होंने आलीकदल के पं. शंकर पंडित और पंडित नीलकंठ को भगवद्गीता के तीन श्लोक सुनाये थे -

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

(यह आत्मा न तो किसी काल में जन्मता है, न ही मरता है। न ही यह अस्तित्त्व में आता हैं, न ही समाप्त होता है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मरने पर भी यह मरता नहीं है।)

इन्द्रियाणि पराण्या हुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।

(इन्द्रियां शरीर से उत्तम हैं और मन इन्द्रियों से भी उत्तम। बुद्धि मन से भी उत्तम है परन्तु ब्रह्म बुद्धि से भी उत्तम है।)

न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्कों न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

(मेरे शाश्वत निवास में प्रकाश के लिये सूर्य, चन्द्रमा अथवा अग्नि की आवश्यकता नहीं है और जो वहां चला जाता है वह लौटता नहीं।)

एक बार तो भगवान जी ने 'पंचस्तवी' के पांच में से चार स्तव सुना डाले।

1929 का वर्ष उनके लिये काफी महत्त्वपूर्ण था। तब तक वे अपने स्वभाव के अनुसार कोई उपयुक्त साधना पद्धति तलाश रहे होंगे। रंगटेंग के पंडित टिक्का लाल के घर को अपना निवास बनाते ही उन्होंने अपने लिये चुनी हुई पद्धति के अनुसार पूरे आवेग से साधना करना आरम्भ कर दिया। इसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपने आसन पर दायीं और एक तकिया और पीठ पीछे एक बड़ा तकिया लगाये उनका स्थूल शरीर होता था। उनका सूक्ष्म शरीर तो अपने इष्ट देव में मगन होता था। वे एकनिष्ठ भक्ति की प्रतिमूर्ति थे जिसे भगवद्गीता में 'एक भक्ति विशिष्यते' कहा गया है। पंडित टिक्का लाल के घर में वे सात बरस रहे। इसके बाद पहले डलहसनयार के पंडित नील कौल सराफ के घर में और फिर ऋषि मुहल्ला के पं. माधव जू सत्थू के घर में वे दस वर्षों तक रहे। डलहसनयार के मकान में वे

'भगवान जी' नाम से संबोधित किये जाने लगे। आखिरकार चन्दपुरा के पं. शामलाल मल्ला का घर उनकी अंतिम विश्राम स्थली बना जहां ग्यारह वर्ष निवास के बाद 1968 में उन्होंने महानिर्वाण प्राप्त किया। ये सभी घर उनकी चरणधूलि से पवित्र हुये। असंख्य लोगों ने इन घरों में उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया। कइयों ने उनकी दिव्य वाणी सुनी, बहुत से रोगमुक्त हुये और कइयों को समस्याओं के समाधान प्राप्त हुये। पर प्रश्नों के परोक्ष उत्तरों को समझने और उनका अर्थ निकालने के लिए बहुत ही सचेत रहना पड़ता था।

कश्मीर की पवित्र भूमि पर विभिन्न प्रकार के संतों ने जन्म लिया है। अधिकांश संत चमत्कार नहीं करते कि कहीं इससे उनकी आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्रभावित न हों और उन्हें अवांछित प्रचार न मिले। कुछ संत अपने में ही मगन रहते हैं। कुछ सामाजिक उत्थान के लिये इस संसार में आते हैं और सच्चरित्रता और नैतिकता का प्रचार करते हैं। कश्मीर के संतों ने यह सब तो किया ही, समय समय पर पीड़ित जनता का उद्धार भी किया है। उन्होंने प्रचार पाने के लिये चमत्कार नहीं किये। ऐसा उन्होंने लोगों की कठिनाइयों को कम करने या धर्म में उनकी आस्था को मज़बूत बनाने के लिये किया। कश्मीर में पठानों के शासनकाल में शकर शाह नामक एक संत हुआ करते थे। जो कश्मीरी पंडित इस्लाम स्वीकार करने से इनकार करते थे उन्हें बोरे में बंद करके, पत्थर बांध कर डल झील में डुबों दिया जाता था। यह जगह अभी भी 'बट मज़ार' यानी पंडितों के कब्रिस्तान के नाम से जानी जाती है। एक बार एक ब्राह्मण को बोरे में बंद कर दिया गया और डल झील में डुबों देने के लिये नाव से ले जाया गया। उसकी पत्नी शकर शाह के पास सहायता मांगने पहुंची। संत ने एक ठीकरे पर फारसी में लिखा, "गरचि हुक्मे कज़ा अस्त, बहुक्में शकरशाह मस्ताना नाव

गरक शवद, हुमा ब्राह्मन बर आयद।" (अगर मौत की सज़ा का भी हुक्म है तो शकरशाह के हुक्म से नाव डूब जाये और ब्राह्मण किनारे लग जाये।) उन्होंने ब्राह्मण की पत्नी से कहा कि पास के एक पुल से ठीकरा नदी में फेंक दे और प्रतीक्षा करे। उसने वही किया और जैसे ही नाव उस बिन्दु पर पहुंची जहां संत का आदेश लिखा हुआ ठीकरा गिरा था नाव पलट गई। सभी डूब गये और ब्राह्मण किनारे लग गया। पत्नी ने जल्दी से बोरे की रस्सी खोली और दोनों घर लौट गये। भगवान जी ने भी इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उनके चमत्कार पीड़ितों का उद्धार करने और ज़रूरतमन्दों की मद्द करने के लिये थे। साथ ही वे आध्यात्मिकता की शक्ति का आभास भी दिलाना चाहते थे जिससे लोग धर्म और सदाचार के रास्ते पर चलते रहें। अपने लिये उन्होंने कभी कोई वस्तु न रखी। लोग जो भी लाते थे भगवान जी पास बैठे भक्तों में बंटवा देते थे। उनकी धूनी या जलते हुये धूप से पवित्र भस्म की एक चुटकी प्राप्त करके ही लोग स्वयं को धन्य समझते थे। जिन्हें उनकी चिलम से एक दो कश लेने का मौका मिलता था उनका तो कहना ही क्या?। जिन्हें वे चाय पीने या खाना खाने के लिये कहते थे वे तो समझते थे कि मोक्ष ही मिल गया। जिन्हें उनके यहां से मूल्यवान वस्तुये प्राप्त हुई उनकी भावना को तो शब्दों में व्यक्त ही नहीं किया जा सकता। उनकी धूनी में पवित्र अग्नि जला करती थी। अग्नि के बारे में ऋग्वेद में कहा गया है, "अग्निमीले पुरोहितम," (मैं नमन करता हूं अग्नि का जिसने सदा ही मेरे हितों की रक्षा की है।)

वेदों में इन्द्र के बाद अग्नि का ही महत्व हैं। दिव्य ललाट पर चमकता बड़ा सा तिलक, रंगीन फिरन और कंधों पर एक चादर से उनके व्यक्तित्व को अपनत्व से भरी गरिमा मिलती थी। जहां भी वे रहते थे हाथों में चिलम, धूनी में जलती हुई

अग्नि, एक छोटी और एक बड़ी चिमटी, धूनी में आहुति डालने के लिये एक लंबी डंडी वाला चम्मच, कुछ तकिये और दाईं ओर आसन पर पीठ पीछे एक मसनद ही उनकी जमापूंजी के तौर पर उनके कमरे में रहा करती थी। उनका निरन्तर मौन कभी कभी 'नारायण' की बहुत ही धीमी फुसफुसाहट से भंग होता था। कभी कभी वे बहुत ही धीमी आवाज़ में कुछ बुदबुदाते थे। लगता था कि वे स्वयं से या उससे बातें कर रहे हैं जो सदा ही उनके भीतर निवास करता है। कश्मीर के आदि कवयित्री महान संत माता ललद्यद ने कहा है, "वुछुम पंडित पननि गरे" - मैंने ज्ञान के उस संवाहक को अपने ही भीतर पाया। आम तौर पर भगवान जी की आंखें टकटकी लगाये ऊपर की ओर देखती रहती; कभी-कभी चिलम का कश लेते लेते ही वे समाधि में चले जाते थे ओर कुछ देर बाद फिर से इस संसार में लौट आते थे। इस स्थिति को 'सहज समाधि' कहते हैं अर्थात परमात्मा से सहज मिलन। यह योग का चरम बिन्दु है।

भगवान जी प्रात: के ओस कणों से निर्मल, चिनार की छाया से शीतल तथा निश्चय में चट्टान से दृढ़ थे। वे उच्च कोटि के योगी थे जो हमेशा आत्म शुद्धि में लगे रहते थे। गीता में भी कहा गया है।-

"तत्रैकाग्रं मन: कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिया:।

उपविश्यासन युञ्जयात योगमात्मविशुद्धये।।

(आसन पर बैठ कर मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करके विचार और इन्द्रियों का निग्रह करके उसे आत्मशुद्धि के लिये योग का अभ्यास करना चाहिये।)

भगवान जी कई दिनों और कभी-कभी महीनों तक इसी तरह बैठा करते थे। उन्होंने योग साधना से आत्मसाक्षात्कार कर लिया था। उन्हें आत्मा की वास्तविकता का पता चल गया था कि यह परमात्मा से अभिन्न है और उसी में इसे लीन हो जाना

है। यह कोई आश्चर्य नहीं कि जब एक बाहर से आये संत ने उनके एक भक्त से उनके आध्यात्मिक स्तर को जानना चाहा तो उस भक्त के बदले भगवान जी ने स्वयं श्रीगीता का यह श्लोक पढ़कर उत्तर दिया:- "न तद भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावक:। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम" - जहां प्रकाश के लिये न सूर्य है न चंद्रमा और न ही अग्नि। जहां पहुंच कर कोई लौटता नहीं वही मेरा परम धाम है।

जो ऐसे आध्यात्मिक धरातल पर हो वह पूरे ब्रह्मांड से एकात्म हो जाता है। उसे हर क्षण सब के बारे में सब कुछ पता होता है। इसी लिये वह अंतर्यामी कहलाता है। भगवान जी के शिष्य श्री शंकरनाथ फोतेदार एक बार उनके सामने बैठे थे। उन्होंने अपने मन में भगवान जी के भव्य व्यक्तित्त्व के अनुरूप आभामंडल के रंग की कल्पना की। तुरंत ही भगवान जी के इर्द गिर्द नीले रंग का आभामंडल बन गया जो कुछ समय तक रहा और फिर गायब हो गया। भगवान जी ने श्री फोतेदार के मन की बात पढ़ ली थी और तुरंत ही अपने ढंग से प्रतिक्रिया दे दी थी। मेरे स्वर्गीय भाई साहब ने मुझे एक घटना बताई थी, एक बार वे इश्बर में स्वामी लक्ष्मण जू के आश्रम पर गये। उन्हें खांसी हो रही थी। वे डर रहे थे कि इतने सारे भक्तों के बीच अगर खांसी आ गई तो क्या होगा। उन्होंने संत का नमन किया। स्वीमी जी ने उन्हें पास बैठने को कहा। फिर उन्होंने ताज़ा मलाई में थोड़ी सी चीनी डालकर दी और कहा कि इसको मुह में रख लो, खांसी नहीं आयेगी। सचमुच निराले ही होते हैं संत और निराला होता है इस संसार के साथ उनका संबंध।

साधना में कठिन परिश्रम करना ही पड़ता है–

भगवान गोपीनाथ जी


भगवान जी
1919 ई० में

ज़ीठयार जेष्ठा देवी अस्थापन के
इस मकान में रहते थे।

3

आत्मसाक्षात्कार की ओर

तरति शोकमात्मवित्

(जिन्हें आत्मसाक्षात्कार होता है वे ही दु:रव का सागर पार कर जाते हैं।)

भगवान जी का जीवन एक ओर तो खुली किताब की तरह है और दूसरी ओर यह रहस्यमय भी है। कोई नहीं जानता कि उनके गुरु कौन थे। परम सत्य तक पहुंचने के लिये जो साधना पद्धति उन्होंने अपनाई असका पता भी किसी को नहीं है। शायद उनके शिष्य उनकी साधना पद्धति के बारे में बता पाएं, क्योंकि रास्ता तो उन्हें भगवान जी ने ही दिरवाया है और रास्ता तब तक दिरवाया नहीं जा सकता जब तक दिरवाने वाला स्वयं उसपर चला न हो। परन्तु सभी शिष्य इस बारे में मौन हैं। शायद इसलिये कि हमारे यहां परम्परा है कि दीक्षित होने के बाद शिष्य गुरु से कहता है, "श्रुतं मे गोपाय" - आपके निर्देश मैंने सुने और उन्हें गोपनीय रखने का मैं वादा करता हूं। इसलिये हमें परोक्ष साक्ष्यों से ही निष्कर्ष निकालने होंगे।

भगवान जी को संतो के पास जाना बहुत अच्छा लगता था। स्यकिडाफर में निवास के दिनों वह जटा धारी स्वामी बालक काव के पांव दबाते थे। 1923 में मट्टन की यात्रा पर जाते हुये वह जीवन साहब से भी मिले जो उसी क्षेत्र के निवासी थे। स्वामी जन काक तुफची के यहां वे नियमित जाया करते थे। हर शनिवार की रात वे वहां उपस्थित रहते और वहां भजन कीर्तन व गुरु गीता का पाठ होता। स्वामी जन काक की तरह भगवान जी भी चिलम पीते थे और धूनी जलाए रखते थे। इसलिये बहुत से लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि स्वामी जन काक ही उनके और स्वामी

आफताब ज़ू वांग्नू के गुरु थे। परन्तु यह भी संभव है कि वे ज़न काक के प्रति श्रद्धा की वजह से ऐसा करते हों। स्वामी जन काक के निर्वाण के अवसर पर ली गई एक फोटो के आधार पर भी कुछ लोग उन्हें ही भगवान जी का गुरु मानते हैं। इस फोटो में भगवान जी स्वामी आफताब ज़ू वांग्नू के साथ खड़े हैं। कुछ लोगों का कहना है कि स्वामी जन काक ने स्वामी आफताब ज़ू से कहा था कि भगवान जी देर से आये हैं मगर यह निश्चित है कि वे सब से आगे निकल जायेंगे। कुछ लोगों का मत है कि अपने मित्र श्री भोला नाथ हंडू को या तो उन्होंने स्वयं दीक्षित किया था या दोनों किसी एक ही गुरु के शिष्य थे। भगवान जी बुधगीर, आलीकदल में स्वामी नारायण ज़ू भान के यहां भी जाते थे जो एक पहुंचे हुये संत माने जाते थे। कुछ लोग आफ्ताब ज़ू वांग्नू को भी उनका गुरु मानते हैं पर उनकी संख्या बहुत कम है। उनकी अपनी बहन को भी लगता था कि शायद पिता नारायण ज़ू भान ने भगवान जी को दीक्षा दी हो। कुछ लोग एक बंगाली साधु को उनका गुरु मानते हैं जो उन्हें 1924 में मिला था। लेकिन अपने गुरु के बारे में उन्होंने स्वयं कभी नहीं बताया। एक बार जब उनके एक शिष्य ने उनके गुरु के बारे में पूछा तो भगवान जी ने बताया, "भगवद्गीता के लगभग सात सौ श्लोकों में से कोई भी किसी का गुरु हो सकता है।" भगवान जी श्री गीता के साक्षात उपासक थे, और उसे ही श्री गुरु का स्थान अपने लिए दिया है। यहां गुरु गोबिंद सिंह जी का यह विचार साक्षी है कि जो ब्रह्म में लीन होना चाहता है उन्हें 'शब्द' ही कारण बनता है, जो पुस्तक को जिवित गुरु का स्थान देकर ग्रहण किया जा सकता है। भगवान जी अपने माता पिता का श्राद्ध तो पूरी श्रद्धा से हर वर्ष करते थे पर अपने गुरु के निर्वाण दिवस के बारे में उन्होंने किसी को कुछ नहीं बताया। माता-पिता की मृत्यु से पहले भगवान जी बड़ी बड़ी मूंछें और लम्बे-लम्बे बाल रखा

करते थे। मट्टन में माता पिता का श्राद्ध करने के बाद उन्होंने सर मुंडवा लिया। उसके बाद न तो उन्होंने मूंछे रखीं और न ही बाल। ऐसे स्वभाव के व्यक्ति का यदि कोई गुरु होता तो वह उनके प्रति श्रद्धा क्यों न दिखाता! जो लोग स्वामी जनकाक तुफची के निकट रहे उनका भी कहना है कि भगवान जी उनके शिष्य के रूप में नहीं जाने जाते थे। यदि उनका कोई गुरु होता तो उसका नाम गुप्त रखने का कोई कारण नहीं दिखता। खैर जो भी हो, इससे एक निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि भगवान जी को औपचारिक दीक्षा किसी ने नहीं दी। उन्होंने सवयं ही विभिन्न साधना पद्धतियों को लेकर प्रयोग किये और अपने स्वभाव के लिये सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति अपनाई। ऐसा लगता है कि उन्होंने सभी प्रमुख आध्यात्मिक पद्धतियों का सार निकाल लिया था और एक ही घूंट में उनकी मुक्ति का रास्ता साफ हो गया। भारत के संतों और महात्माओं के लिये ऐसा करना सामान्य सी बात थी। कहते हैं आनन्दमयी मां (1896 - 1983) ने, जो उच्चकोटि की संत थीं रूढ़ियों को तोड़ते हुये स्वयं को दीक्षित किया और एक वर्ष बाद अपने पति भोलानाथ को दीक्षा दी। श्री रामकृष्ण जैसे संत भी हुये हैं जिन्होंने गुरु से दीक्षा लेने से पहले ही अकल्पनीय आध्यात्मिक ऊंचाइयां प्राप्त कर लीं। शायद भगवान जी भी स्वयं अपने ही गुरु रहे हों। पर यह निष्कर्ष निकालते समय भी एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। वे कहा करते थे कि साधक के लिये दो चीज़े आवश्यक हैं-एक तो सबकुछ भूलकर केवल साधना पर ध्यान केन्द्रित करना दूसरा अपने गुरु की कृपा की तडप। ऐसे में अध्ययन निश्चित करताहै कि श्री मद्भगवतगीता को ही भगवान जी ने अपना श्री गुरु मान लिया और वे "योग: कर्मसु कौशलम्" के साक्षात स्वरूप थे।

भगवान जी पारम्परिक पंचांग उपासना के अनुसार गणेश, सूर्य, नारायण, शिव और शक्ति की पूजा करते थे। गणेश को 'आदिदेव' कहा जाता है और सबसे पहले उन्हीं की पूजा होती है। सूर्य को 'प्रत्यक्ष देव' कहा जाता है। नारायण वैष्णव और शिव शैव मतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिव 'प्रकाश' है तो शक्ति उनकी अभिन्न ऊर्जा जिसकी सहायता से वे सजीव या निर्जीव सारी सृष्टि की रचना करते हैं। बाद में भगवान जी ने शक्ति की उपासना पर ध्यान केन्द्रित किया। इसी लिये पच्चीस वर्ष की आयु में ही देवी मां ने उन्हें दर्शन दिए। बाईस वर्ष की आयु से ही वह नित्य हारी पर्वत की परिक्रमा करने के लिये जाते थे। वे सुबह सवेरे हारी पर्वत पहुंच जाते थे और देवी आंगन में पूजा करके एक खुली झोंपड़ी में चिलम पीते हुये अपने इष्ट के ध्यान में डूबे रहते। इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिये वे मौनव्रत रखते थे या कई दिनों तक उपवास करते थे। उन्होंने 'प्राणाभ्यास' की कठिन तान्त्रिक साधना भी की थी। इसका आभास उनके कई बार खून की उल्टियां करने से होता है जो इस तरह की साधना में अक्सर हो जाता है।

शनि की शांति के लिये भी भगवान जी पूजा करते रहते थे। ज्योतिष में शनि के कुप्रभावों की जिस स्थिति को साढ़सती कहते हैं उसको शांत करने के लिये इस पूजा की आवश्यकता पड़ती होगी। साढ़सती से प्रभावित लोग इसको कष्टों से राहत दिलाने के लिये भगवान जी से प्रार्थना करते होंगे। एक बार किसी व्यक्ति की आयु एक वर्ष बढ़ाने के लिये उन्होंने एक माह तक उपवास किया क्योंकि उसके घरवालों को उसकी जरूरत थी। शायद वे अपने हिस्से का अन्न उसके लिये रख रहे थे। 'एइऑन सेन्टर आफ कॉस्मोलॉजी' की निदेशिका पैट्रिज़िया नोरेली बैशलेट भगवान जी की शनि पूजा का अलग ही कारण बताती हैं। उनके अनुसार शनि मकर राशि का

स्वामी है और मकर राशि भारत की परिस्थितियों के निर्धारण के लिये महत्वपूर्ण है। शनि की तुलना 'काल' से भी की गई है। इसे शिव का महाकाल रूप माना जाता है। पैट्रिज़िया निष्कर्ष निकालती हैं, कि शनि भाग्य का केन्द्रीय ग्रह है और इसी लिये भगवान जी प्रतिदिन इसकी पूजा करते थे। उनका मानना है कि आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त कर चुके ऐसे संत अपने अंत:करण के निर्देशों के अनुसार ही ऐसी पुजा करते हैं।

अंतत: भगवान जी शिव की 'अघोर उपासना' करते दिखाई पड़ते हैं। इसका पता जीवन भर उनके साथ रही दो वस्तुओं 'चिलम' और 'धूनी' से चलता है। इस उपासना ने उन्हें त्रिकालदर्शी बना दिया और उन्हें मृत्यु तक को नियंत्रित करने की शक्ति दी। काल और अंतरिक्ष की सीमाओं से परे जाकर परमतत्त्व के साथ इच्छानुसार संपर्क करने की असाधारण शक्ति भी उन्हें प्राप्त हुई। शायद वे कभी - कभी कुंडलिनी योग भी करते थे क्योंकि उनके कई शिष्यों ने उन्हें समाधि की स्थिति में देखा है। समाधि कुंडलिनी जागरण से ही संभव है। कुंडलिनी एक नाड़ी होती है जिसमें प्रसुप्त ऊर्जा होती है। 'सौन्दर्य लहरी' में आदि शंकराचार्य ने इसे 'चिदानन्द लहरी' और 'परमानन्द लहरी' कहा है। साधक शाश्वत आनन्द का अनुभव करता हुआ घंटों आसन से चिपका रहता है। परन्तु एक बार उन्होंने एक शिष्य को कुंडलिनी साधना करने से मना कर दिया। ऐसा इसलिये हो सकता है कि उन्हें उस शिष्य के लिये वह साधना पद्धति उपयुक्त नहीं लगी। उन्हें लगा कि इससे वह आध्यात्मिक उपलब्धियां प्राप्त नहीं कर पायेगा। सच्चे गुरु की हैसियत से उन्हें तो हर शिष्य के लिये सबसे उपयुक्त पद्धति ही सुझानी थी।

भगवान जी युवावस्था में ही जीवन मुक्त की स्थिति में पहुंच गये थे। सामान्य

युवक तो इस आयु में भटक भी जाता है और सांसारिक सुख और इच्छायें उसे आकर्षित करती हैं। पर भगवान जी के लिये तो यौवन जीवन के उद्देश्य के बारे में सोचने का और परम सत्य को प्राप्त करने के लिये उपयुक्त रास्ता तलाश करने का समय था। स्थूल शरीर को वे कुछ नहीं समझते थे। अपने टांगों को लकड़ी के लट्ठे कहते थे। कभी-कभी उनका शरीर सूज जाता था। उपवासों और रोग के कारण निर्बल हो जाता था। परन्तु ऐसी किसी भी स्थिति को वे महत्व नहीं देते थे। एक बार एक चूहे ने उनके पैर के तलवे को काट खाया। घाव बहुत समय तक रहा मगर उन्हें तो जैसे खबर ही नहीं थी। इससे स्पष्ट होता है कि वे सूक्ष्म शरीर को ही महत्वपूर्ण मानते थे जिससे सत्, चित और आनन्द का अनुभव होता है । मांसाहार से उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता था। कभी-कभी वे लम्बे समय तक कुछ नहीं खाते थे और फिर कभी असामान्य खाना भी खा लेते थे। भक्तों की लाई अफीम और धतूरे के बीजों का सेवन तो वे ऐसे करते थे जैसे वे मटर के दाने हों। 'पानक' जैसे मादक द्रव्य तो लोग लाते ही थे, कई बार भगवान जी व्हिस्की या ब्रांडी की पूरी बोतल ही खाली कर देते थे। यह देखकर वहां मौजूद लोग चकित रह जाते थे।

उनकी साधना पद्धति का वर्गीकरण करना बहुत कठिन है। उन्होंने अपने कई शिष्यों का मार्गदर्शन चिलम पिलाकर, केवल एक दृष्टि डालकर या धूनी के चिमटे से छूकर किया है। अलग अलग शिष्यों को वे अलग अलग साधना का तरीका सुझाया करते थे। इससे पता चलता है कि वे भक्त के रूझान, क्षमता और मेधा की परीक्षा करके ही उसका मार्गदर्शन करते थे। तीर्थ स्थलों की यात्रा तो वे करते ही थे और कई लोगों को उन्होंने देवी मां के कुमारी रूप के दर्शन कराये। इससे पता चलता है, कि वे साकार उपासना भी करते थे। उनके अपने हाथों से लिखी देवताओं की

स्तुति भक्ति के प्रति उनके रूझान का भी पता देती है। उनके कमरे में लगे देवी देवताओं, गुरू नानक, स्वामी बालक जू और श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे संतों के चित्रों से भी इसका बोध होता है। भगवान जी को शास्त्रीय संगीत भी बहुत पसंद था। इससे भी भक्ति मार्ग के प्रति उनके रूझान का पता चलता है। प्रख्यात संगीतज्ञ पं. जगन्नाथ शिवपुरी तबला और हारमोनियम लेकर अपने शिष्यों के साथ भगवान जी के यहां गाना सुनाने पहुंच जाते थे। एक दिन भगवान जी ने उनसे कहां कि तानपुरा भी साथ लाया करें। इससे साफ पता चलता है कि वे शास्त्रीय संगीत को सुगम संगीत पर वरीयता देते थे। शिवपुरी जी भगवान जी के सामने कई शास्त्रीय रागों का गायन करते थे। मुहम्मद अब्दुल्ला तिब्बतबकाल और पं. वेद लाल वकील जैसे प्रसिद्ध गायक भी उनके सामने सूफियाना कलाम और भजन प्रस्तुत किया करते थे। इससे उनके आध्यात्मिक जीवन में सामीप्य की स्थिति का पता चलता है जो भक्ति मार्ग का महत्वपूर्ण अंग है। वे 'ओम्' पर ध्यान केन्द्रित किया करते थे। यह बीजाक्षर जो वेदों के मर्म का प्रतीक है उन्होंने अपने हाथ से लिखा है। गीता में भी कहा गया है, "प्रणवः सर्व वेदेषु," अर्थात मैं ही ओम् हूं जो सभी वेदों का मर्म है। इस प्रणव के इर्द गिर्द भगवान जी ने आलंकारिक शैली में राम और शिव भी लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि वे शिव और विष्णु को एक मानते थे। ओम् की उपासना के प्रति वे इतने अनुरक्त थे कि एक बार उन्होंने 'ओम्' को ईश्वरत्व का आधार बिन्दु बताया था। मैत्री उपनिषद में ओम् की व्याख्या यों की गई है, "ब्राह्मण की ध्वनि ओम् है। ओम् के अंत में मौन है। यह आनन्द का मौन है जहां भय और दुख का अस्तित्त्व नहीं है। यह स्थिर, अचल, अनन्त और अमर है। उच्चतम सत्य तक पहुंचने के लिये पूर्ण श्रद्धा से ब्राह्मण की ध्वनि और मौन पर ध्यान केन्द्रित करो। क्योंकि कहा गया है कि परमात्मा ध्वनि और

मौन है। इसका नाम ओम् है इसलिये ध्यान की स्थिति को प्राप्त करो, मौन रहकर उस पर ध्यान केन्द्रित करने की स्थिति को प्राप्त करो।" भगवान जी ओम् पर ध्यान केन्द्रित करने के पक्ष में थे। इससे उनकी 'निर्गुण' निराकार उपासना का बोध होता है। यह उनके आध्यात्मिक जीवन में 'सारूप्य' का भी धोतक है जो रामानुजाचार्य के 'विशिष्टाद्वैत' का महत्वपूर्ण अंग है। अतः यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे मानते थे कि सभी पद्धतियों का उद्देश्य एक है। यह भी कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक अन्वेषण के विभिन्न स्तरों पर वे विभिन्न पद्धतियों को ठीक समझते थे। अंततः वे सिद्ध बने। उन्होंने जन्म और मृत्यु को जीतकर परमात्मा से ऐसा सम्पर्क बना लिया कि वे कालजयी अस्मिता या 'सायुज्य' के स्वामी बने जिसे शंकर ने अपने अद्वैत में साधक का परम उद्देश्य बताया है। बादरायण के 'ब्रह्मसूत्र', उपनिषदों और भगवद्गीता पर टीका लिखते समय तीन महान टीकाकारों शंकराचार्य, रामानुज और माध्वाचार्य ने तीन अलग अलग दर्शनों को जन्म दिया। भगवान जी ने सत्य ही कहा था कि परब्रह्म एक पेड़ की तरह है। विभिन्न विचारधारायें और साधना पद्धतियां इसकी शाखाएं हैं जिनमें से किसी को भी पकड़ कर मनुष्य परब्रह्म तक पहुंच सकता है।

एक बार वे तुलमुल (क्षीर भवानी) गये और कोई पूजा किये बिना पास की एक झोंपड़ी में जाकर चिलम पीने लगे। एक संत जो यह देख रहा था चक्कर में पड़ गया। पर जो परमात्मा से एकात्मक होने की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर चुका हो उसे नमन करने की क्या आवश्यकता है। परमात्मा उससे अलग कहां है जो वह झुके! इसलिये भगवान जी के लिये परंपरागत कर्मकांड, अनुष्ठानों और रूढ़ियों का कोई अर्थ नहीं था। किसी कवि ने क्या खूब कहा है। – "जो खुद से गुज़र

जाते हैं सजदा नहीं करते।" वे विरक्त थे पर एक अनासक्त साधक की भांति अपने परिवार के कामों में भी रूचि लेते थे। श्री शाली बताते हैं कि एक बार भगवान जी किसी की मृत्यु के बाद नदी के घाट पर दसवें दिन के श्राद्ध में उपस्थित थे। पूरे समय वे ऊपर आकाश में सूर्य को देखते रहे। वे करुणा की प्रतिमूर्ति थे और कभी-कभी हालात की मांग के अनुसार लोगों की मृत्यु तक को रोक देते थे। एक बिल्ली उनके आसन पर बैठ जाती थी। परन्तु भक्तों की तमाम कोशिशों के बावजूद वे उसे भगाने की इजाज़त नहीं देते थे।

इसलिये उनके गुरु या साधना पद्धति पर बहस बेकार है। पुष्पदंत जी के 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' में कहा गया है,

"त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजु - कुटिल-नानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।"

(भिन्न भिन्न अवसरों पर वेदो, सांख्य, योग, शैव और वैष्णव मतों के अनुयायी व्यक्तिगत वरीयता के आधार पर अपने मत को ही लाभदायक बताते हैं। फिर भी हे प्रभु! इन सीधे या टेढ़े, अलग अलग रास्तों पर चलने वाले लोग तुम्हें ही पाने की लालसा रखते हैं। ठीक वैसे ही जैसे हर नदी समुद्र की ओर ही जाती है।)

1978 में एक आस्ट्रलियाई भक्त श्री सिम्पफेनडॉर्फर के सामने प्रकट होकर भगवान जी ने कहा, "राष्ट्रीयता और धर्म की भावना से ऊपर उठकर संसार के सभी पवित्र तीर्थस्थलों और लोगों के समुदायों के बीच एक सार्वभौमिक दिव्य प्रकाश का

अन्तर्संबंध होना चाहिये। तभी संसार में समरसता की स्थापना हो सकती है।"

ऐसी ही सार्वभौमिक समदृष्टि संत को 'अहं बह्मोस्मि' की स्थिति तक ले जाती है। 'मनखुदा' या 'अनलहक' भी ऐसी ही स्थितियां है। 'चिदानन्द रूपो शिवोऽहं शिवोऽहं, अर्थात चेतना और परमानंद के रूप में मैं ही शिव हूं और सूफियों का 'हमा-ओ अस्त' भी ऐसी ही आध्यात्मिक स्थिति की और इशारा करते हैं।

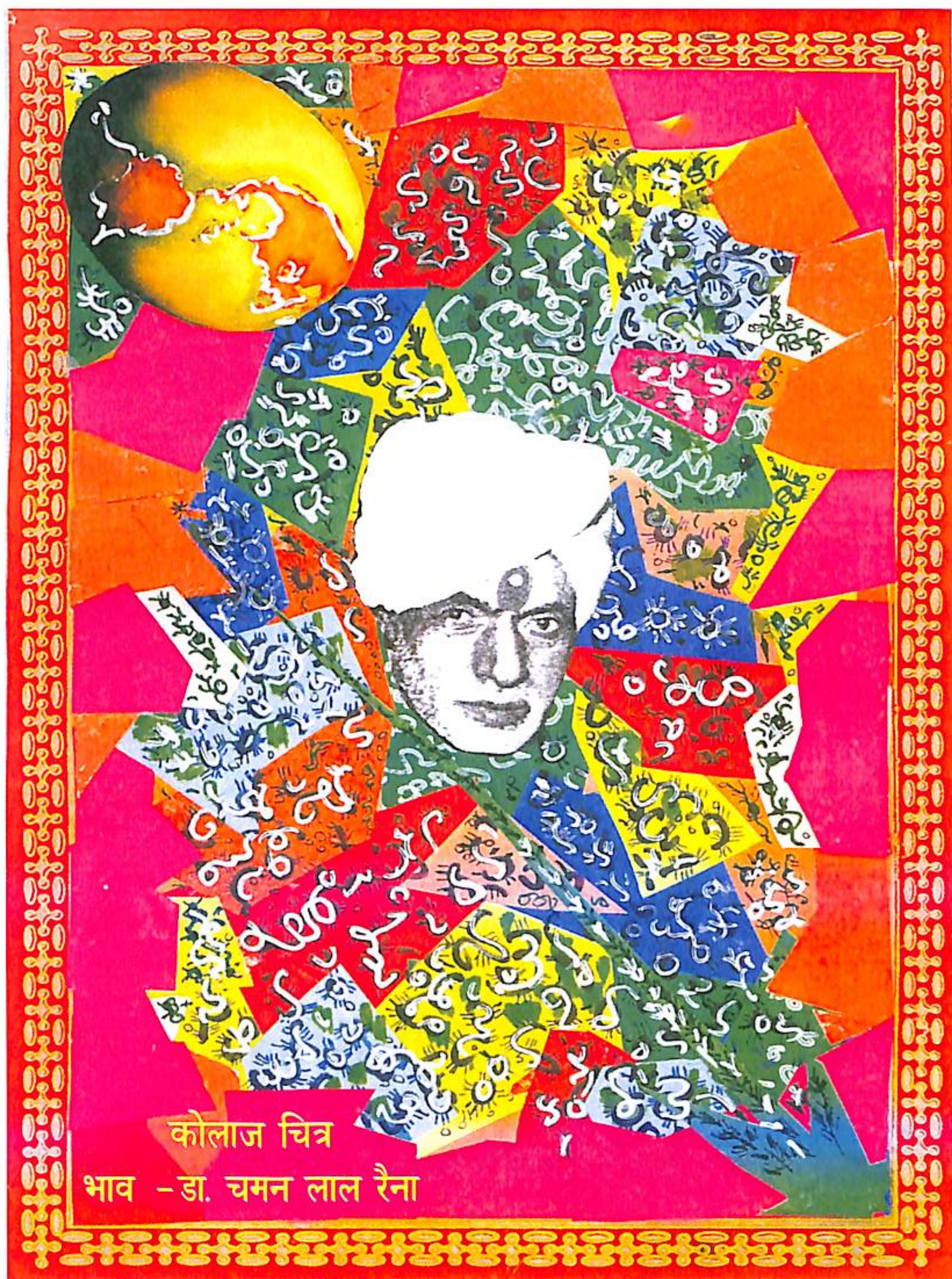
श्री राम कृष्ण ने 'सत्य' के अन्वेषण के लिये मुस्लिम और ईसाई पद्धतियों से प्रयोग कर के भी वही सफलता प्राप्त की जो उन्होंने 'अद्वैतवादी' भारतीय पद्धतियों से प्राप्त की। माता ललद्यद ने भी 'शिव छुय थलि थलि रोज़ान, मो जान बट् तु मुसलमान,' कहकर स्पष्ट कर दिया कि परमात्मा हर चीज़ में व्याप्त है। फिर यह हिन्दू और मुसलमान का भेद क्यों। भगवान जी ने भी एकबार कहा था, "ह्योंद छा अख तु मुसलमान ब्याख?" (हिन्दू और मुसलमान में क्या कोई अंतर है?)

एक बार एक महिला भगवान जी के दर्शनों के लिय आई। उसके साथ थैलाभर बगूगोशे यानी स्वादिष्ट रसीली, पीली नाशपातियां लिये एक मुसलमान नौकर था। भगवान जी ने सभी उपस्थित भक्तों में नाशपातियां बांटने का आदेश दिया। सबसे पहले मुसलमान नौकर को नाशपातियां देने का इशारा उन्होंने किया। एक भक्त ने नाशपातियां बांटना शुरू किया तो नौकर को एक नाशपाती दी मगर भगवान जी ने उसे एक और देने का इशारा किया। एक के बाद एक, पांच नाशपातियां उसे मिलीं लेकिन दूसरों को एक एक ही मिली। बाद में उस नौकर ने बताया कि जब वह महिला नाशपातियां खरीद रही थी तो उसकी इच्छा हुई थी कि कुछ नाशपातियां अपने लिये भी ले ले क्योंकि उसे लग रहा था कि जिस व्यक्ति के लिये ये खरीदी जा रही हैं वहां

उसे एक भी नहीं मिलेगी। परन्तु यहां तो उसे पांच मिली। इससे पता चलता है कि भगवान जी के यहां जो भी जाता था उसकी छोटी से छोटी इच्छा का भी उन्हें ध्यान रहता था। यह उनके सार्वभौमिक दृष्टिकोण और व्यापक अंतर्दृष्टि से ही संभव हो सकता था। नाशपातियां खाने की इच्छा नौकर पर काफी समय से हावी थी। उसे लग रहा था कि नौकर होने की वजह से उसे एक भी नाशपाती नहीं मिलेगी। पर उसे पांच नाशपातियां दिलवाकर भगवान जी ने उसे एक अपूर्ण इच्छा की पीड़ा से मुक्त करके उसे आध्यात्मिक बल प्रदान किया। यह वही संत कर सकता है जिसे हर प्राणी और वस्तु में परम-तत्व की उपस्थिति का अनुभव हो। इस संसार के हर प्राणी में आध्यात्मिक संभावनायें हैं। भगवान जी ने उस मुसलमान नौकर में भी ये सम्भावनाएं देखीं। इसीलिये ईशावास्योपनिषद में कहा गया है, "ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचित जगत्यां जगत्", (इस जगत की हर वस्तु और हर घटना में परमात्मा व्याप्त है) या जैसा गीता जी में कहा है। 'वासुदेवः सर्वमिति' (यहां की हर वस्तु श्रीकृष्ण ही है)।

लोगों के धन को
सोच समझकर हाथ
लगाओ जैसे किसी सांप
को छू रहे हो –

भगवान जी



चित्र में 108 रंगीन कागज़ जोड़े गए हैं, वायव्वी कोण में ब्रह्माण्ड तथा बिन्दु रुप में भगवान जी दर्शाए गये हैं।

4

निराले संत के निराले लक्षण

दैवी सम्पद्विमोक्षये।

(दिव्य गुण ही मोक्ष दिलाते हैं।)

श्रीमदभवद्गीता में कहा गया है 'अनेक जन्म संसिद्धः ततो यांति परां गतिम्' अर्थात् एक साधक अनेक जन्मों के बाद पूर्णता प्राप्त करता है और तब उसे परम गति मिलती है। इस जन्म में भगवान जी की आदतों और स्वभाव से तो पता चल ही जाता था कि उनके पास साधना से अर्जित अथाह आध्यात्मिक सम्पधा है। वे आजीवन बह्मचारी रहे ओर उनका विवाह कराने के सारे प्रयास असफल हो गये। परमात्मा से एकात्मक हो चुके उन जैसे संत को पत्नी या संतान की आवश्यकता तो थी नहीं। वे जानते थे कि शरीर के भीतर स्थित आत्मा स्वयं में ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड है। तो उन्हें उसके एक अंश के रूप में पत्नी या संतान से क्या प्राप्त होता। सब कुछ तो उनके ही पास था। परम तत्व या 'ब्रह्म' से ही उन्हें अनुराग था और वे उसे यज्ञ, दान, साधना और ब्रह्मचर्य से प्राप्त कर चुके थे। आध्यात्मिक स्तर पर भी वे ब्रह्मचारी थे यानी हर समय परमात्मा में तल्लीन-ब्रह्मणे विचारति इति। उनका विश्वास था कि गृहस्थ भी परम सत्य को प्राप्त कर सकता है पर ब्रह्मचारी साधकों का मार्गदर्शन करने में उन्हें विशेष प्रसन्नता होती थी। स्त्रियों ओर पुरूषों दोनों की सच्चरित्रता को वे विशेष महत्व देते थे। बुरे चरित्र के व्यक्तियों से जो नकारात्मक ऊर्जा प्रवाहित होती है उसे वे सहज ही अनुभव कर लेते थे और फिर उनके कोप से बचना कठिन हो जाता था। कई ऐसे लोगों को वे रास्ते पर लाये जो भटकने ही वाले थे। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जिनसे पता चलता है कि वे सच्चरित्रता को कितना महत्व देते थे। एक बार की बात

है जब भगवान जी ऋषि मोहल्ला में बड़ी बहन के दामाद पंडित माधव जू सत्थू के घर में रहा करते थे। तब भगवान जी की आयु पचास वर्ष के आसपास रही होगी। एक औरत भगवान जी के दर्शनों को आई। वह नीचे बैठी ही थी कि उन्होंने उसे लोहे की चिमटी से पीटना शुरू कर दिया। वह भाग खड़ी हुई। भगवान जी आंगन तक और वहां से बाहर गली तक उसके पीछे भागे। वे गुस्से से कांप उठे। जब वे लौटे तो उन्होंने वहां बैठे सब आदमियों को बताया कि वह औरत बुरे चरित्र की थी और सुबह ही दो बदमाशों के पास गई थी। उन्हें बहुत गुस्सा आ रहा था कि एक पापी उनके निकट आने की हिम्मत कैसे कर सकता है। एक बार कश्मीर के बाहर से पांच महिलाएं उनसे मिलने आई। वे नाराज़ हुये और बोले कि ये औरतें इस कलियुग में कुकर्मो के सहारे जी रही हैं।

एक बार एक आदमी उनसे मिलने आया। भगवान जी ने उसे ज़बरदस्त फटकार लगाई क्योंकि उसके एक विधवा से संबंध थे जिससे वह अनैतिक संबंध भी स्थापित करना चाहता था। भगवान जी ने उसे चेतावनी दी कि अगर उसने ऐसा किया तो अनर्थ हो जाएगा। उस व्यक्ति ने उनकी सलाह मानकर कुकर्म से तौबा कर ली।

एक व्यक्ति एक युवती की सुन्दर टांगों पर आसक्त था। वह भगवान जी से मिलने गया तो उन्होंने उसके विचार पढ़ लिये और उसे बताया कि इस शरीर के बाह्य सौन्दर्य के पीछे दौड़ना बेकार है, क्योंकि यह शरीर यमराज के भोजन के सिवा कुछ नहीं है। इस तरह से उन्होंने अंतरात्मा के सौन्दर्य पर बल दिया जो अजर और अमर है।

एक सज्जन ने स्वीकार किया कि जब वे कॉलेज में पढ़ रहे थे तो उन्होंने नये फैशन के कपड़े सिलवाये ताकि कक्षा की लड़कियां उनकी ओर आकर्षित हों।

उनके दोस्तों ने भी उनके कपड़ों और लड़कियों को लेकर टिप्पणी की थी। वे भगवान जी के दर्शन करने गये तो उन्होंने तुरंत उनके मन की बात जान ली। उन्होंने कहा कि मानव शरीर गंदगी से भरा हुआ है और इसे अनावश्यक महत्व नहीं देना चाहिये। लड़कियों को लेकर उनके दोस्तों ने जो टिप्पणियां की थीं वे भी भगवान जी ने दोहरा दीं। सांसारिक भोग विलास की निरर्थकता का स्पष्ट करने का यह निराला ढंग था।

स्वयं भी वे शरीर को अधिक महत्व नहीं देते थे। हर सुबह नल पर जाकर अपना मुंह और जनेऊ धोते और फिर ऊपर आकर अपने आसन पर बैठते। इसके बाद वे पगड़ी बांधते और माथे पर बड़ा सा केसर का तिलक लगाकर उसके बीच थोड़ी सी भस्म तथा सिन्धूर लगा देते थे। इसके बाद वे लोहे की एक सिग्ड़ी में धूनी जलाते थे। यह सिग्ड़ी एक पत्थर पर बड़ी सी लोहे की तश्तरी में रखी रहती थी। धूनी में सुबह से शाम तक आग जलती रहती थी। सुबह वे उसमें कुछ आहुतियां डालते थे और तब चिलम भर कर पीने लग जाते थे। धूनी में शक्कर, चावल, जौ, सूखे मेवों, पुदीने, बेल पत्र और तरह तरह के फूलों की आहुतियां पड़ती थीं। यह यज्ञ एक निर्लिप्त 'सात्विक यज्ञ' हुआ करता था जिसे भगवद्गीता में उच्च कोटि का यज्ञ कहा गया है। विधि अनुसार फल की आंकांक्षा के बिना, केवल यज्ञ करने पर ध्यान केन्द्रित करके किया गया यज्ञ ही सात्विक यज्ञ कहलाता है। इसी भाव को आधार बना कर भगवान जी हमेशा ध्यान रखते थे कि धूनी हमेशा जलती रहे और वह कभी दहकता हुआ कोयला न हो। अग्नि की लौ जिस प्रकाश का प्रतिनिधित्व करती हैं उसे ही वे महत्व देते थे। यहां अनायास ही वैदिक प्रार्थना 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' याद आती है। 'हे प्रभो! हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ।'

1925 तक भगवान जी पश्मीने का महंगा फिरन और अच्छे जूते पहनते थे।

परन्तु पिता की मृत्यु के बाद उनके लिये सब कुछ बदल गया और उन्हें पहनने ओढ़ने का ध्यान नहीं रहा। वे केवल बड़ी बहन और भक्तों के ज़ोर देने पर ही कपड़े बदलते थे, वह भी एक हफ्ते के बाद। वे फिरन, पोच्छ, कमीज़ और वास्कट ही पहनते थे। गर्मियों में रंगीन लिनन का बना फिरन पहनते थे। सर्दियों में ऊन के फिरन के ऊपर कम्बल ले लेते थे। कठिन साधना के दौरान साफ सफाई, भोजन और अन्य चीजों का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता था। कहा जाता है कि जीवन के अंतिम तीस वर्षों में वे मुश्किल से दो बार नहाये होंगे। एक बार क्षीर भवानी के दर्शन करने तुलमुल गये तो सिन्धु नहर में नहाये और दूसरी बार तब जब कड़ाके की ठंड पड़ रही थी और डल झील का पानी तक जम गया था। कड़ाके की ठंड से राहत दिलाने के लिये भक्तों ने उनसे प्रार्थना की थी। उन्होंने स्नान किया तो तुरंत ही शीत लहर का प्रकोप समाप्त हो गया और लोगों को सर्दी से राहत मिली। हर महीने वे अपना सर मुंडवा लेते थे और भक्तजन उनके शरीर पर तेल की मालिश करते थे। इन भक्तों का कहना है कि उनके शरीर से एक अजीब सी सुगन्ध आती थी। स्थूल शरीर का त्याग करने से कुछ वर्ष पहले उन्होंने मालिश करवाने से इन्कार कर दिया। स्थूल शरीर को वे बहुत कम महत्व देते थे क्योंकि वे सदैव ब्रह्म मे लीन रहते थे। वे सच्चे अर्थो में ब्राह्मण थे। कहा भी गया है, "ब्रह्मं जानाति इति ब्राह्मण:" -ब्रह्म को जानने वाला ही ब्राह्मण है।

भोजन के बारे में उनका कहना था कि भूख होने पर खाना नहीं खाना चाहिये बल्कि शरीर को भोजन तभी देना चाहिये जब खाना खाने की आवश्यकता हो। साफ लगता है कि वे भूख और प्यास पर विजय प्राप्त करना चाहते थे। कई दिनों तक भोजन न करना और फिर एक साथ खाना खा लेना तो उनके लिये सामान्य बात थी। भगवद्गीता में अन्न के पाचन के विषय में कहा गया है।

"अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमास्थित:।

प्राणापानसमायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

(जीवों के शरीर में वैश्वानर के रूप में चिरस्थायी रहकर प्राण और अपान अर्थात सांस लेने और छोड़ने से जुड़ा रहकर मैं चार प्रकार के अन्न का पाचन करता हूं)

अत: उनके अन्न का पाचन और शरीर का पोषण तो वही वैश्वानर करता था जिससे वे एकाकार थे। इसीलिये खाने पीने की उनकी आदतें और शरीर के पोषण के बारे में उनके विचार अलग ही तरह के थे। आम तौर पर वे सुबह नौ बजे कश्मीरी काली चाय जिसे 'मोगल्य चाय' कहते हैं, का एक खोस पीते थे। दोपहर लगभग एक बजे वे भोजन में चावल और सब्जियां आदि खाते थे। इस भोजन के लिये उनकी बड़ी बहन देवमाली कई बार याद दिलाती थीं, वे उत्तर देते थे कि 'इतनी जल्दी क्या है', या 'अब देर हो गई इसलिए नहीं खाऊंगा।' शाम को वे फिर से 'मोगल्य चाय' या नमक वाली 'शीरय चाय' का एक खोस पीते थे। आम तौर पर वे दिन में एक बार ही भोजन करते थे। स्थूल शरीर छोड़ने से लगभग आठ माह पहले उन्होंने वह भी बंद कर दिया। भोजन करते या चाय पीते समय वे अपने में ही मग्न रहते थे। चाय ठंडी हो जाती तो वे उसे या तो एक ही घूंट में हलक से नीचे उतार देते थे या खिडकी से बाहर फेंक देते थे। उपवास करते समय शरीर निर्बल हो जाता था पर मन सचेत रहता था। चिलम तो लगातार उनके साथ रहती थी और वे कहते थे कि इससे उन्हें पर्याप्त पोषण मिलता है। इन्द्रियों पर उन्हें पूरा नियंत्रण था और इसी लिये उन्हें न तो भूख लगती थी और न ही किसी चीज़ की आवश्यकता रहती थी। भक्तों की लाई हर चीज़ वे स्वीकार करते थे। व्हिस्की या ब्रांडी की बोतल में से कुछ तो वे वहां मौजूद लोगों में बांट देते थे और बाकी खुद पी जाते थे। कभी कभी तो पास बैठे किसी

आदमी से कहते थे कि शराब बाहर फेंक कर बोतल खाली कर आओ या कभी कहते थे कि बोतल नदी में फेंक दो। शराब पीने के बाद उनका शरीर कांपने लगता था और वे एक दो घंटे के लिये समाधि में चले जाते थे। कृत्रिम नशीले पदार्थ उनका क्या कर पाते! उनपर तो रात दिन परमात्मा से एकाकार होने का नशा छाया रहता था। मुगल बादशाह बाबर ने जब गुरू नानक देव जी को शराब का एक प्याला पेश किया तो उन्होंने कहा,

"चरस, भांग, अफियून सब उतर जात परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।"

(चरस, भांग ओर अफीम का नशा तो सुबह होने पर उतर जाता है परन्तु प्रभु के नाम की खुमारी दिन रात चढ़ी रहती है।)

भगवान जी पर भी इसी नाम की खुमारी चढ़ी रहती थी। शराब और अन्य नशीले पदार्थ इसी खुमारी को बढ़ाने का सामान बनते थे। पियक्कड़ों की तरह कुछ देर की मस्ती तो उनका उद्देश्य हो ही नहीं सकता था। उन्हें ईश्वर के स्मरण की निरंतर खुमारी अभीष्ट थी जैसा मिर्ज़ा गालिब ने भी कहा है – 'मय से गरज़ निशात है किस रू सियाह को? इक गूना बेखुदी मुझे दिन रात चाहिये'। वे जानते थे कि परमात्मा केवल 'उपद्रष्टा' अर्थात तमाशा देखने वाला ही नहीं, 'अनुमन्ता' अर्थात अनुमति देने वाला ही नहीं, वह 'भर्ता' अर्थात् परम रक्षक और 'भोक्ता' अर्थात् उपभोग करके प्रसन्न होने वाला भी है। इसीलिये वे हर वस्तु प्रसाद के रूप में ग्रहण करते थे जो उसी परम तत्त्व को जाती थी जिससे वे एकाकार थे।

भोजन को लेकर उनकी कोई खास पसन्द नहीं थी। वे मांस मछली भी खा लेते थे। भेड़ की कलेजी और हल्दी डाल कर बनाए गये पीले चावल जिसे कश्मीरी में

'तहर' कहते हैं, का प्रसाद उनके आश्रम में अक्सर बंटता था। कट्टर शाकाहारी लोग भी इस 'तहर' को पवित्र प्रसाद मान कर स्वीकार कर लेते थे। एक बार एक भक्त को इस प्रकार का मांसाहारी प्रसाद लेने में 'हिचकिचाहट हुई। आश्रम में बैठे बैठे ही वह स्वप्न् की सी स्थित में डूब गया और उसने दो 'अग्निकुंड' देखे। एक में से आग की ऊंची ऊंची लपटें उठ रही थीं। और दूसरे कुंड की अधजली लकड़ी में से छोटी छोटी लपटे उठ रही थी। उन दोनों कुंडों में मांस के टुकड़े फेंके गये। ऊंची लपटों वाले अग्निकुंड में ये बिना किसी गंध के तुरंत ही जल गए। दूसरे में आंच धीमी थी। मांस अच्छी तरह जल नहीं पाया और बदबू आने लगी। वह व्यक्ति जैसे सोते से जागा। उसे स्पष्ट संदेश मिल गया था कि एक मुक्त आत्मा तेज़ जलती आग की तरह होती है, जो किसी भी वस्तु का उपभोग करने के बावजूद उस से अप्रभावित रहती हैं परन्तु एक सामान्य मनुष्य को तो सोचना ही पड़ता है कि वह क्या खाये और क्या न खाये। भगवान जी के निकट रह चुके लोग बताते हैं कि वे अंडे, प्याज़ या लहसुन नहीं खाते थे। परन्तु इसके पीछे किसी धार्मिक कारण की सम्भावना कम ही लगती है। कश्मीरी पंडित परिवारों में अंडे, प्याज़ या लहसुन न खाने की परम्परा होने के कारण ही लगता है कि वे ये चीज़े नहीं खाते थे। भोजन विशेषज्ञों की राय भी यही है कि इन चीजों के खाने से काम वासना उत्तेजित होती है।

अपने जीवन के अंतिम दस वर्षो में उन्होंने चार या पांच बार एक असाधारण काम किया। जिस तश्तरी में उनकी धूनी रहती थी उसे उन्होंने तम्बाकू से भर दिया। उसके ऊपर उन्होंने हल्दी के चूर्ण की एक तह बिछादी। उसके ऊपर एक एक तह चीनी, चावल, मक्की और गेहूं के आटे से लगा दी। फिर उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी जो लगभग दो दिन तक जलती रही। सख्त आदेश था कि इसको कोई न छुए और

न ही कोई चिमटे या किसी अन्य चीज़ से इसे हिलाये। इस दौरान वह स्वयं बहुत कम भोजन करते थे और चिलम पीते हुये हर समय अपने में ही मग्न रहते थे। एक दिन उनके शिष्य श्री शंकर नाथ फोतेदार ने हिम्मत करके इसका कारण पूछा। भगवान जी ने बताया कि किसी की जान बचाने के लिये मृत्यु के देवता महाकाल को शांत करने के लिये अनुष्ठान किया जा रहा है। इससे पता चलता हैं कि उनमें मृत्यु को रोकने की शक्ति भी थी। नचिकेता मृत्यु के बाद जीवन का भेद जानने के लिये सीधे यमराज के पास पहुंच गये थे मगर भगवान जी ने तो उसे वश में कर रखा था और वे किसी की मृत्यु रोकने का आदेश भी दे सकते थे।

जिसके पास ऐसी शक्तियां हों उसे और क्या चाहिये। वह तो 'आप्तकाम' होता है। उसकी कोई इच्छा अपूर्ण नहीं होती। इसीलिये तो भगवान जी अपने पास कुछ नही रखते थे। कोई टॉफियां लेकर आता तो बच्चों में बांट देते। किसी से सौ रूपये के नोट मिलते तो उन्हें एक रूपये के नोटों में बदलवाकर अमरनाथ यात्रा पर जाने वाले साधुओं में बांट देते थे। उनकी बहन देवमाली कई बार कहती थी कि घर चलाने के लिये पैसे नहीं हैं और तुम सारा पैसा साधुओं में बांट रहे हो। पर वे जानते थे कि साधुओं की जरूरत ज़्यादा है। साधुओं ने भी माना कि भगवान जी के दिये एक रूपये से ऐसी परिस्थितियां बनीं कि उन्हें अपनी जरूरतों के लिये पर्याप्त धन मिल गया।

वे चरस, भांग ओर धतूरे का सेवन तो करते थे पर यह भी जानते थे कि सामान्य आदमी को ये चीज़े नुकसान पहुंचा सकती है। एक बार किसी ने उनके यहां से चरस की कुछ गोलियां चोरी से उठा कर जेब में रख लीं। भगवान जी से क्या छुपा था। उन्होंने कहा कि इन चरस की गोलियों को रुमाल में बांध लो। उसने घबराकर गोलियां हाथ में ली ही थीं कि वे एक काले कोबरा सांप में बदल गई जो धीरे धीरे

रेंगता हुआ भगवान जी के आसन तक आया। लोगों को नशीले पदार्थों से दूर रखने का उनका यह अपना ही ढंग था।

महान संत ऋषि पीर से जुड़ी दो घटनायें याद आती हैं। कुछ मौलवियों ने उन्हें खाना खाने के लिये बुलाया। वे तैयार हो गये मगर शर्त रख दी कि जो भी व्यंजन तैयार किये जायें वे सबसे पहले उन्हें ही परोसे जायें। उनसे पहले उन व्यंजनों को कोई चखे भी नहीं। हर मेहमान अपनी अपनी जगह बैठ गया तो तश्तरियों पर से कपड़ा हटाया गया। हर चीज़ अपनी मूल स्थिति में थी। तश्तरियों में चावल के कच्चे दाने और, हरी-हरी सब्जियों के साथ साथ जीवित मुर्गे भी थे जो इधर-उधर घूमने लगे। ऋषि पीर ने एक लंगड़े चूज़े की ओर इशारा किया जिसकी एक टांग बावर्ची पहले ही खा गया था। दूसरी बार भी कुछ मुसलमानों ने उन्हें खाने पर बुलाया। वे फिर तैयार हो गये मगर शिष्यों को दावत पर जाने से मना कर दिया। शिष्य सोचने लगे कि खुद तो जा रहे हैं, हमें अपने साथ जाने लायक नही समझते। ऋषि पीर उन्हें नदी किनारे ले गये। वहां उन्होंने मुंह से अपनी आंते बहार निकाल लीं और नदी के पानी से धोकर वापस निगल लीं। फिर उन्होंने अपने शिष्यों से भी ऐसा ही करने के लिये कहा। शिष्य बात समझ गये और उन्होंने ऋषि पीर के पैरों पर गिरकर क्षमा मांगी। यही स्थिति भगवान जी की भी थी। वे जो कुछ भी करते थे उसकी नकल करने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता था।

कभी-कभी भक्तजन उनके निजी उपयोग की चीज़े लाया करते थे। कुछ लोग कपड़े भी ले आते थे। पश्मीने या रेशम के कीमती कपड़े हों या साधारण सूती कपड़े भगवान जी प्रेम से सब स्वीकार करते थे। केई भक्त कपड़े पहन कर दिखाने की प्रार्थना करता तो वे उसी समय पहन कर दिखा देते थे। कई बार तो वे हर भक्त

को खुश करने के लिये, कई वस्त्र एक साथ पहनकर दिखा देते थे। कई फिरन या कई कमीज़े एक के ऊपर दूसरा और दूसरे के ऊपर तीसरा पहनकर वे खड़े हो जाते थे, चेहरे पर स्नेह का भाव लिये हुये और सभी भक्त स्वयं को धन्य समझते थे कि उनके लाये हुये वस्त्र भगवान जी के शरीर पर सजे हुये हैं। एक बार एक आदमी चपातियां और पका हुआ कीमा ले कर आया। भगवान जी के सामने यह सब रखने में उसे हिचकिचाहट महसूस हो रही थी क्योंकि भक्तों ने पहले ही बहुत सारे व्यंजन लाकर रखे हुये थे। भक्तों की भीड़ में भगवान जी के निकट पहुंचने में उसे कुछ समय लगा। वह पास पहुंचा तो भगवान जी ने धीरे से कहा, "निकालो जो लाये हो।" उसकी हिचकिचाहट जाती रही, अपने सबसे प्यारे 'बब', स्नेही पिता के सामने उसने अपनी प्यार भरी भेंट रख दी। ऐसी ही हालत श्रीकृष्ण के सामने सुदामा की हुई थी। सुदामा को क्या पता था कि सर्वव्यापक भगवान उसके हाथ से सत्तू की पोटली छीनकर सत्तू फांक लेंगे। भगवान जी भी प्यार से दी गई कोई भी भेंट बड़े उत्साह से स्वीकार करते हैं। इसीलिये वे भगवान कहलाते हैं। भगवद्गीता में भी कहा गया है,

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः।।"

(श्रद्धापूर्वक जो कोई भी मुझे एक पत्ता, फूल फल या पानी ही देगा, मैं उसे एक पवित्र हृदय की पवित्र भेंट समझकर स्वीकार करूंगा।) भगवान जी का व्यवहार भी भगवद्गीता में दिये गये भगवान श्रीकृष्ण के व्यवहार जैसा ही था।

भगवान जी अच्छी तरह जानते थे कि गरीब मां बाप के लिये बेटी की शादी करना कितना मुश्किल होता है। ऐसी ही समस्या पंडित दीनानाथ की भी थी जो उस

'मल्ला' परिवार के पुरोहित थे जिनके साथ भगवान जी ने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष गुज़ारे। दीनानाथ जी के बचत खाते में कुल पांच सौ रूपये थे, और उन्हें अपनी तीसरी बेटी की शादी करनी थी। उनके मन में तरह तरह के विचार आ रहे थे, "क्या करूं? खुद ज़हर खा लूं या बेटी को ज़हर दे दूं?" यही सोचते सोचते वे भगवान जी के पास पहुंचे और उन्हें अपनी समस्या बताई। भगवान जी ने कहा कि चिन्ता मत करो। आज से तीसरे दिन फिर से यहां आओ और मेरा दरवाज़ा तीन बार खटखटाओ। कोई प्रतिक्रिया न मिले तो लौट जाना। वह तीसरा दिन सोम अमावस्या का था यानी सोमवार के दिन पड़ने वाली अमावस्या का। वर्ष में ऐसी दो अमावस्याएं होती हैं। तीसरे दिन दीनानाथ जी वहां पहुंचे और तीन बार दरवाज़ा खटखटाया। भगवान जी ने स्वयं दरवाजा खोला। पं. दीनानाथ जी ने वहां कमल की एक पंखुड़ी देखी जिसपर पानी की एक बूंद थी। वह बूंद तीन छोटी-छोटी बूंदों में बंट गई। पंडित जी से इन तीन बूंदों को तीन बार पीने के लिये कहा गया। इस निराले चरणामृत को उन्होंने पी लिया और भगवान जी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि इस दिन के बाद उनकी जेब कभी खाली नहीं रहेगी और छह महीने के अंदर उनकी बेटी की शादी हो जायेगी। ऐसा ही हुआ। भगवान जी ने पं. दीनानाथ को दो सौ रूपये दिये। इस पैसे से उन्हें विभिन्न स्त्रोतों से बेटी की शादी के लिये सभी आवश्यक वस्तुयें प्राप्त हुई। उसके बाद उनकी जेब कभी खाली नहीं रही।

ऐसी ही एक और घटना है। भगवान जी क्षीर भवानी में थे। एक महिला उनके पास आकर बोली कि कुछ दिनों बाद उसकी बेटी की शादी है और साहूकार तय की गई रकम देने से मुकर गया है। भगवान जी के पास उस समय केवल साठ

रूपये थे। उन्होंने वे रूपये महिला के हाथ में रख दिये। उनके दो शिष्य पं. दीनानाथ तिक्कू और स्वामी अमृतानंद भी वहां थे। भगवान जी के कहने पर श्री तिक्कू ने छह सौ रूपये दे दिये।

कुछ दिनों बाद वह महिला भगवान जी के यहां आई और उन्हें बेटी के विवाह के यज्ञ का प्रसाद दिया। "इस प्रसाद की कोई आवश्यकता नहीं थी। मैं तो सारा समय वहीं था," भगवान जी ने कहा। हालांकि उस दिन वे श्रीनगर में ही थे मगर उनका सूक्ष्म शरीर अवश्य ही उस लड़की के विवाह समारोह में मौजूद रहा होगा।

'नहीं' कहना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था। उनका नकारात्मक उत्तर भी सकारात्मक आवरण में लिपटा होता था। कभी-कभी जब वे कई दिनों तक भोजन नहीं करते थे तो उनकी बहन या कोई भक्त इनसे थोड़ा सा भोजन करने का आग्रह करते थे। भोजन तो करना नहीं होता था मगर इनकार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। वे कहते, "हमने तो पहले ही भोजन कर लिया है," कई बार सामने बैठा कोई भक्त जाने की आज्ञा मांगता। भगवान जी यदि आज्ञा न देना चाहते तो कहते, "जल्दी क्या है।" मत जाओ उनके मुंह से नहीं निकलता था।

अपने बारे में बात करते समय वे बहुवचन का प्रयोग करते थे। 'हम भोजन करेंगे', 'हम वहां जायेंगे' आदि। हिन्दी में स्वयं को बहुवचन से सम्बोधित करना आम बात है। यह हिन्दी प्रदेश के कई क्षेत्रो की स्थानीय बोलचाल के अनुकूल है। पर कश्मीरी में स्वयं को बहुवचन से सम्बोधित करना एक बुजुर्ग के लिये भी सामान्य नहीं है जब तक कि वह असाधारण या असामान्य न हो। भगवान जी तो कण कण में व्याप्त परमात्मा से एकाकार हो चुके थे इसलिये पूरे ब्रह्माण्ड और उस परमात्मा की अपने साथ उपस्थिति को कभी भूलते नहीं थे। एक पौराणिक कथा के अनुसार

एकत्त्व से बहुत्त्व में परिवर्तित होने की परमात्मा की इच्छा के कारण ही सृष्टि का निर्माण हुआ। परमात्मा ने कहा "एकोहं बहुस्यामि", और सृष्टि अस्तित्त्व में आई। इसी बहुत्त्व की भावना भगवान जी में हमेशा रहती थी। गीता में भी यही कहा गया है,

"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।"

(योग से जिसने समदृष्टि प्राप्त कर ली हो वह हर जड़-चेतन में आत्मा को और आत्मा में सब को देखता है।)

भगवान जी का पूरा जीवन इस आध्यात्मिक स्थिति का उदाहरण है। गृहस्थि न होते हुये भी भगवान जी अपनी भांजियों और अन्य कनिष्ठों के लिये पारिवारिक बडे का दायित्व निभाते थे। सामाजिक नियमों का पालन करते हुये वे जामाता जैसे आदरणीय सम्बंधियों को विशेष आवभगत करते थे। लड़कियों को ससुराल जाते समय कुछ न कुछ "अत् गत" के रूप में दिया जाता था। कोई भी भक्त उनके यहां सेवा कार्य करके खाली हाथ नहीं जाता था। कुछ न कुछ प्रसाद के रूप में उसे दिया जाता था। भगवान जी ने विचार रूपी अग्नि में मोह और अज्ञान के बंधन को भस्मीभूत कर दिया था। वे शाश्वत एवं सनातन चित स्वरूप थे और मोक्ष प्राप्त करके परम आनन्द की स्थिति को प्राप्त कर चुके थे।

चट्टान की तरह
सत्य के पक्ष
में खड़े हो जाओ-

बब भगवान



ज्वाला जी खीव के अस्थापन में
इस चिनार के तले आसन लगाते थे।

5

संतों का सत्संग और तीर्थयात्रायें

सतां सद्भिः संघः कथमपि हि पुण्येन् भवति

(सत्पुरूषों से निकटता सत्कर्मों से मिलती है)

संतों के पास जाने में भगवान जी को असीम सुख मिलता था। उनके समकालीन संत जन काक तुफची के यहां बहुत आना जाना था। संत जन काक के एक शिष्य स्वामी आफ्ताब जू वांगनू भगवान जी के काफी करीबी थे। बडगाम के पंडित महेश्वरनाथ त्रिछल बताते हैं कि एक दिन आफताब जू ने उनसे कहा, "गोपी! दर्शन कर लिया?" "लगातार कर रहा हूं", भगवान जी बोले। इसका अर्थ यह था कि उस परमात्मा के दर्शन वे निरन्तर करते रहते थे। ऐसा ही उत्तर श्री रामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द को दिया था जब उन्होंने पूछा था कि क्या भगवान को श्री रामकृष्ण ने देखा है? "मैं उसे देख रहा हूँ जैसे तुम्हें देख रहा हूँ", श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया था। गीता में भी यही कहा गया है कि सच्चे भक्त की पहचान यही है कि वह हर समय उसी की बात करता है, उसी के बारे में सुनता है और उसी के साथ रहता है। महात्मा उसे कहा गया है जो परमात्मा को हर वस्तु में हर स्थान पर देखे परन्तु ऐसा महात्मा दुर्लभ है। श्री गीता के शब्दों में "वासुदेव: सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ:।"

कई अन्य संतों से भी उनका सम्पर्क था। बीस पच्चीस बरस की उमर में ही वे बालक जू काक नाम के जटाधारी संत के पांव दबाया करते थे। कहा जाता है कि एक बार भगवान जी ने स्वामी बालक जू को 'हतो बालक कावा' कह कर सम्बोधित किया था। इससे उस समय की उनकी आध्यात्मिक स्थिति का पता चलता

है कि वे इतने बड़े संत को इस तरह सम्बोधित कर सकते थे। बालक जू को भगवान जी पहुंचा हुआ संत मानते थे। उनकी दी हुई 'गडवी' (पीने का पानी रखने का पीतल का पात्र) उन्होंने बहुत सम्भाल कर रखी थी। यह गड़वी भगवान जी को डल झील के किनारे 'इश्बर' नामक स्थान पर स्थित बालक जू के आश्रम से मिली थी। संतों से मिलने का कोई मौका वे हाथ से जाने नहीं देते थे। पर वे यह भी कहते थे कि कुछ लोग संतों के आवरण में बाज़ीगर होते हैं।

एक बार क्षीर भवानी में भगवान जी नील बब नाम के एक संत से मिले। दोनों इकट्ठे वापस लौटे और उन्होंने दोदरहामा के मैदान में विश्राम किया। नील बब उनके पास बैठे और कुहनी मार मार कर उन्हें तंग करने लगे। भगवान जी शांत बैठे रहे। एक शिष्य ने कारण पूछा तो भगवान जी ने बताया कि यह आध्यात्मिक क्षेत्र में ईर्ष्या की अभिव्यक्ति है।

नीलबब अकसर भगवान जी से मिला करते थे। प्रसिद्ध संत नंद बब भी भगवान जी की आध्यात्मिक क्षमताओं से बहुत प्रभावित थे। उन्हीं के कहने पर उनकी एक शिष्या का विवाह भगवान जी के घर में ही संपन्न कराया गया। शिष्या के पिता की मृत्यु को एक दिन तक उससे छुपा कर रखा गया ताकि विवाह बेरोक चलता रहे। भगवान जी के स्थूल शरीर छोड़ने से पहले ही नन्द बब को इसका आभास हो गया था। वे भगवान जी के घर के सामने वाले एक घर में से भगवान जी के कमरे की खिड़की की ओर टिकटकी लगाये देखते रहे। वे कह रहे थे कि भगवान जी के चले जाने से उनके कंधो पर अतिरिक्त बोझ आ जायेगा।

भगवान जी के कुछ समकालीन संत समय समय पर उनके यहां आया करते थे। उनमें से एक थे 'स्यद मोल' जो 'स्यद बब' भी कहलाते थे। वे कुछ देर बैठे रहते

थे और प्रसाद लेकर निकल जाते थे। हुशुर के स्वामी नंदलाल अपने दो शिष्यों को भेंट लेकर भेजा करते थे परन्तु स्वयं वे कभी नहीं आये। स्वामी मस्तराम और स्वामी क्राल बब (जिनका आश्रम ऊधमपुर में है) भी उनसे मिलने आते थे। भगवान जी की बहन के दामाद एक बार मनिगाम के स्वामी कशकाक के दर्शनों के लिये गये। स्वामी जी ने उनसे कहा, "तुम यहां क्या करने आये हो जबकि स्वयं भगवान जी तुम्हारे घर में हैं?" ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू के निकट रहे कुछ लोग बताते हैं कि वे भी भगवान जी की काफी प्रशंसा करते थे हालांकि दोनों एक दूसरे से कभी मिले नहीं थे। वाराणसी और दूसरे पवित्र स्थलों से भी कभी कभी कुछ साधु भगवान जी के दर्शनों को आया करते थे। अमरनाथ और अन्य तीर्थों को जाने वाले साधु हर वर्ष उनके यहां आकर एक रूपये की दक्षिणा प्राप्त करते थे।

भगवान जी संतों की समाधियों पर भी जाते थे। 1936 में अमरनाथ यात्रा से लौटते समय वे 'हांगलगोंड' के स्वामी मिर्ज़ा काक की समाधि पर गये थे। संसार की हर वस्तु से एक ऊर्जा प्रवाहित होती है जो उस वस्तु को एक पहचान देती है और इस जगत में उसके स्थान को निर्धारित करती है। संत लोग हमेशा साधना में लगे रहते हैं और उनके भीतर से सकारात्मक ऊर्जाएं प्रवाहित होती रहती है। जब वे भौतिक शरीर छोड़ते हैं तो वह एक आम आदमी का नहीं एक संत का शरीर होता है जो साध ना का उपकरण होता है। इस शरीर से भी असाधारण ऊर्जा प्रवाहित होती है जिसका प्रभाव संत की समाधि में भी रहता है। इसी लिये संतों की समाधियों पर जाना महत्वपूर्ण होता है। भगवान जी यह बात जानते थे। भगवान जी और उनके कुछ शिष्यों के हाथों, पैरों और शरीर के अंगों से भी तरंगे प्रवाहित होती रहती थी। ये सकारात्मक तरंगे थीं और जिसने भी इन्हें सच्चे और पवित्र मन से ग्रहण किया उसके

दु:ख दूर हो गये।

कुछ संत अपने शिष्यों की तकलीफें दूर करने के लिये उन्हें भगवान जी के पास भेजा करते थे। श्री अमरनाथ फोतेदार जम्मू व कश्मीर राज्य सरकार में मण्डलीय वन अधिकारी के पद पर कार्यरत थे। बेकसूर होने के बावजूद वे नौकरी से निलंबित कर दिए गये थे। वे परेशान से अपनी पत्नी के साथ कहीं जा रहे थे कि भगवान जी के समकालीन संत नंद बब मिल गये। नन्द बब ने उनके माथे पर तिलक लगाया और काग़ज़ के एक टुकड़े पर उर्दू में लिखकर दे दिया कि संतों के शंहशाह गोपीनाथ से दरख्वास्त करो जिसे सात तमगे मिले हैं और जो चंदपुरा में रहता है।

श्री फोतेदार भगवान जी के पास गये। वहां जन्मकुंडली में ग्रहों की स्थिति के बारे में उनकी कई शंकाओं का समाधान हुआ। भगवान जी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वे फिर से बहाल होंगे और उनकी सर्विस बुक में प्रतिकूल प्रविष्टि की जायेगी। उन्होंने यह भी बताया कि सरकार बदलने पर उनकी सभी शिकायतें दूर हो जायेंगी। ये सभी बातें सच साबित हुईं।

1970 में भगवान जी के एक शिष्य श्री शंकर नाथ ज़ाडू की धर्मपत्नी का स्वर्गवास हुआ तो वे उत्साह हीन से हो गये। उनकी बेटी उन्हें सत्य सांई बाबा के पास मुंबई ले गई। सांई बाबा ने जब बताया कि उनके गुरु गोपीनाथ ने उनकी सहायता करने के लिये कहा है तो श्री ज़ाडू चकित रह गये। सत्य सांई बाबा ने पवित्र भस्म दी जिसका एक भाग श्री ज़ाडू ने फांक लिया और कुछ माथे पर मल लिया। उन्हें शरीर में बिजली की तरंगे सी दौड़ती महसूस हुई और वे बिल्कुल ठीक हो गये। सत्य सांई बाबा ने कहा कि भगवान जी महानतम कश्मीरी संत है जो जीवन मुक्त हैं यानी जीवनकाल में ही मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। श्री सी.एल. मोज़ा का कहना है कि उनके

एक परिचित श्री कंठ कौल ने बताया था कि उनकी बहन के यहां से कोई व्यक्ति संत कश काक के दर्शन करने मनिगाम गया था। वहां संत कशकाक ने कहा, "मेरे पास क्यों आये हो जबकि मोहतमिमे दरबार (दरबार का प्रमुख) तुम्हारे घर में ही है। मंजूरी तो आखिरकार उन्हीं को देनी है। मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है।" संत कशकाक भगवान जी के बारे में ही बात कर रहे थे। श्री शंकरनाथ फोतेदार ने भगवान जी की जो जीवनी लिखी है उसकी भूमिका में पंडित श्रीधर जू धर ने लिखा है कि एक अन्य संत स्वन काक जी ने श्री शंकरनाथ फोतेदार को आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिये भगवान जी के पास भेजा था।

कश्मीर के तीर्थस्थल भी भगवान जी को बहुत आकर्षित करते थे। कश्मीर में शक्ति उपासना का भी बहुत प्रभाव रहा है। इसको लेकर एक छोटी सी कहानी है। कश्मीर के बाहर के किसी प्रदेश से एक संत आया। कश्मीर आकर उसने एक स्थानीय संत से पूछा कि शक्ति साधना, अन्य साधना पद्धतियों से श्रेष्ठ है तो कैसे? तभी एक ग्वालिन पास से गुज़री। स्थानीय साधु ने बाहर से आये हुये साधु से कहा कि ग्वालिन से थोड़ा दूध ले आये। साधु ग्वालिन के पास गया और उससे थोड़ा दूध मांगा। उस ग्वालिन के सर पर दूध का मटका था। वह बोली कि सर से मटका उतारने में थोड़ा हाथ लगा दो। मज़बूत कद काठी का वह साधु पूरा ज़ोर लगाकर भी मटके को हिला नहीं पाया। ग्वालिन ने ताना कसा, "लगता है तुममें शक्ति नहीं है।"

शक्ति में श्लेष है। एक अर्थ तो यह है कि साधु में शारीरिक शक्ति नहीं है और दूसरा अर्थ है कि वह शक्ति उपासना में विश्वास नहीं रखता है। साधु को उत्तर मिल गया और उसने स्थानीय संत के पांव छू लिये। कश्मीर में कई शक्ति पीठ हैं जिनमें माँ भगवती अपने विभिन्न रूपों में वास करती है। इनमें हारी पर्वत की मां

शारिका, तुलमुल की मां राज्ञा और खिव की ज्वाला मां हैं। भगवान जी बचपन से ही पांच देवी देवताओं की पूजा करते थे जिनमें मां भगवती भी एक है। वे लम्बे समय तक रोज़ हारी पर्वत की परिक्रमा के लिये जाते रहे।

मां शारिका का यह तीर्थ श्रीनगर में एक पहाड़ी पर स्थित है। यहीं वह प्रसिद्ध श्री चक्र है जिसके कारण इस तीर्थ को चक्रेश्वर कहा जाता है। बादशाह अकबर ने इस पहाड़ी के इर्द गिर्द एक विशाल दीवार बनवाई थी जिसमें कई विशाल प्रवेश द्वार हैं। पहले प्रवेश द्वार के पास गणेश मन्दिर है। पहाड़ी के इर्द गिर्द कई स्थानों पर अन्य देवताओं के मन्दिर भी हैं पर मुख्य तीर्थ चक्रेश्वर ही है। वहां पहुंचने के लिये बहुत सारी सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं। तलहटी में 'देवी आंगन' है। निकास द्वार 'काठी दरवाजा' कहलाता है जहां एक पवित्र जल कुण्ड वाला एक तीर्थ है जिसे पोखरिबल कहते हैं। यहीं उन्होंने एक साधक को सुन्दर कन्या के रूप में मां भगवती के दर्शन कराये थे। यहीं उन्होंने उसे अपने हाथों से कमलककड़ी के स्वादिष्ट पकौड़े, जिन्हें कश्मीरी में नदुर्मोंजि कहते हैं, खिलाये थे। यहीं के पवित्र जलकुण्ड से गाद निकालने के लिये उन्होंने स्वेच्छा से श्रमदान किया था। कई बार वे शारिका भगवती के इस प्रसिद्ध तीर्थ में दोपहर को जाते थे और इस मन्दिर के पुजारी श्री सालिग्राम के यहां रुकते थे।

एक बार वे पवित्र पहाड़ी के निकट, एक अन्य पुजारी पंडित रामजू के घर में लगभग नौ महीने तक रहे। मां भगवती शारिका से उनका ऐसा सम्बन्ध था कि पोखरिबल के जलकुण्ड के निकट, काठी दरवाज़े के अंदर, उन्होंने एक अन्य व्यक्ति पं. नील कौल को भी मां भगवती के दर्शन करवाये। मां भगवती के दर्शनों की ये घटनाएं 1937 से 1946 के बीच हुई थीं। जब वे डलहसनयार में पं. नील कौल सराफ

के घर में रहते थे। कई भक्तों का कहना है कि मां शारिका भगवान जी को घर से हारी पर्वत लाने के लिये अपना शेर भेजती थीं। ऐसा संत इच्छानुसार निराकार से साकार उपासना की ओर जा सकता है। जब कि वह परमतत्व का अनुभव, सार्वभौमिक चेतना और सत्, चित, आनन्द के रूप में कर सकता है वह उसे मनुष्य रूप में भी देख सकता है उससे बातचीत कर सकता है, उससे खेल सकता है। भगवान जी के कारण ही वे लोग धन्य हो गये जिन्हें किसी भी रूप में मां भगवती के दर्शन प्राप्त हुये।

तुलमुल में भगवती महाराज्ञा या क्षीर भवानी का तीर्थ भी उनके आकर्षण का केन्द्र था। यह तीर्थ श्रीनगर से 28 किलोमीटर उत्तर में है। यहां एक जलकुण्ड है जिसके बीचोंबीच संगमरमर का बना भगवती महाराज्ञा का मंदिर है। जलकुण्ड के पानी का रंग समय समय पर बदलता रहता है। इस क्षेत्र के इर्द गिर्द लोहे का जंगला लगाया गया है और पत्थर की पटियों का रास्ता बनाया गया है। शेष क्षेत्र चिनार के वृक्षों से भरा हुआ है। बाहर एक पंक्ति में धर्मशालाएं हैं जिनकी निचली मंज़िलों में दुकानें हैं। तीर्थ के एक तरफ सिन्धु नदी अपनी पूरी शक्ति और आवेग से बहती है और आगे चलकर प्रयाग में वितस्ता नदी से मिलती है। अत: इस तीर्थ तक सड़क और नदी दोनों रास्तों से पहुंचा जा सकता है। दंतकथाओं के अनुसार भगवती राज्ञा पहले श्रीलंका में थी जहां उन्हें मांस का चढ़ावा चढ़ता था। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता था। इसलिए उन्होंने कहीं और जाने की सोची। आखिरकार हनुमान उन्हें वहां ले आए जहां आज क्षीरभवानी का तीर्थ है। यहां उन्हें केवल दूध और मिश्री के ढेले चढ़ते हैं जिन्हें 'कंद' कहते हैं। जलकुण्ड में भी यही अर्पित किया जाता है। इसीलिये उन्हें क्षीरभवानी या दूध की देवी कहा जाता है। तीर्थस्थल के पास ही दूधवाले कश्मीरी भाषा में चिल्लाया

करते थे, "दोदहन बॉविव, तमी सूत्य प्रॉविव, (दूध चढ़ाओ और उसी से प्राप्ति मिलेगी)। आमतौर पर लोग हर माह के शुक्लपक्ष की अष्टमी के आसपास कुछ दिनों के लिये इस तीर्थ की यात्रा पर जाते थे, पर भगवान जी कई महीनों तक यहीं रहते थे। शायद ही कभी वे जलकुण्ड या मंदिर के पास पूजा करते देखे गये हों। 'चिलम' हाथ में लिये वे अधिकतर एक लकड़ी के चबूतरे में ही रहते थे। अपने लिये तो खाना बनवाते ही थे, कभी कभी अन्य तीर्थयात्रियों को भी खिला देते थे। एक बार एक भक्त सोचने लगा कि भगवान जी तो पवित्र जलकुण्ड से दूर ही रहते हैं। कोई पूजा भी नहीं करते। इसका तो कोई औचित्य ही नहीं है। उस भक्त को चमचमाते हुये सिंहासन पर बैठी माँ राज्ञा के दर्शन हुए जिनके पास ही चिलम पीते हुए भगवान गोपीनाथ बैठे हुये थे। इसका स्पष्ट अर्थ था कि भगवान जी जहां भी हों मां भगवती हमेशा उनके साथ रहती थीं।

देवी-देवताओं के साथ संतों की निकटता की परम्परा कश्मीर में हमेशा से रही है। कहा जाता है कि एक बार माता रूप भवानी और एक मुस्लिम सूफी संत नदी के दो किनारों पर खड़े थे। उस पार से सूफी संत ने चिल्लाकर कहा, "ऐ रोपी (कश्मीर में अर्थ चांदी) इस तरफ आ जाओ। मैं तुम्हें स्वन (कश्मीर में अर्थ सोना) बना दूंगा।" उस पार से रूप भवानी ने कहा, "इस पार आ जा। मैं तुम्हें 'मोख्त' (कश्मीर में एक अर्थ मोती और आध्यात्मिक अर्थ 'मुक्त') बना दूंगी। पहले सूफी संत नदी पार करते दिखाई दिए। वे एक नाव के मल्लाह थे जिसमें शिव और पार्वती बैठे हुये थे। रूप भवानी नहीं मानी और क्षण भर में ही सूफी संत ने देखा कि वे एक नाव में नदी पार कर रही हैं और शिव के बगल में पार्वती बनकर बैठी हुई है। ऐसी ही परंपरा के अनुसार भगवान जी ने भी स्वयं को भगवती महाराज्ञा के पास बैठा दिखा दिया। प्रसिद्ध

संगीतज्ञ पं. जगन्नाथ शिवपुरी ने क्षीर भवानी में भगवान जी को भक्ति संगीत और शास्त्रीय संगीत में रूचि का प्रदर्शन करते हुये देखा था। विचित्र सी बात है कि शक्ति के अलग अलग रूपों की उपासना करने के कारण कश्मीरी पंडित तीन भागों में बंटे हुये है। एक भाग माता शारिका, दूसरा भाग भगवती महाराज्ञा और तीसरा भाग ज्वाला माता की पूजा करता है। भगवान जी के लिए तीनों एक ही 'शक्ति' का रूप थीं। इसलिये वे ख्रिव गांव में स्थित ज्वाला मां के तीर्थ की उपेक्षा कैसे कर सकते थे। यह स्थान श्रीनगर से तीस किलोमीटर दक्षिण पूर्व में है। ज्वाला मां का तीर्थ एक पहाड़ी पर है। पहाड़ी के नीचे एक जलस्रोत है जिसमें भक्तजन स्नान करते हैं और तब ज्वाला मां के दर्शनों के लिये पहाड़ी पर चढ़ जाते हैं।

भगवान जी हर वर्ष तीन या चार दिनों के लिये वहां जाते थे। इस तीर्थ पर उन्होंने ऐसा चमत्कार कर दिखाया जैसा माता अलखेश्वरी ने लगभग एक शताब्दी पूर्व कर दिखाया था। डलहसनयार में अपने निवास स्थान से बड़ी बहन और कुछ भक्तों के साथ वे ज्वाला मां के तीर्थ की यात्रा के लिए गये। उन्होंने लगभग पचास तीर्थयात्रियों को अपने साथ भोजन करने के लिये कहा जबकि केवल चार पांच लोगों के लिये खाना पकाया गया था। उनकी बहन परेशान हो गई मगर भगवान जी ने कहा कि हर आदमी को खाना परोसने के बाद बर्तन को ढक देना। हिचकिचाते हुये बहन ने ऐसा ही किया और पाया कि सबको खाना परोसने के बाद भी बर्तन में चावल बचे हुये हैं। प्रभु यीशु के बारे में भी कहा जाता है कि उन्होंने हज़ारों भूखों को केवल पांच रोटियों और पकी हुई दो मछलियों से खाना खिलाया था। माता अलखेश्वरी रूप भवानी के मायके से एक दिन खीर से भरी हुई देग उनकी ससुराल भिजवायी गई थी पर उनकी सास को लगा कि यह काफी नहीं है। माता रूप भवानी ने कहा कि आपको

जितनी बांटनी है बांट् लीजिए। सास ने खीझकर अपने पराये सभी को भारी मात्रा में खीर बांटी पर इसके बाद भी कुछ खीर देग में बची रही।

भगवान जी शक्ति की ही नहीं, शिव की भी उपासना करते थे। अमरनाथ जी की पवित्र गुफा की यात्रा उन्होंने दो बार 1936 और 1946 में की। पहली बार उनके साथ स्वामी आफताब जू वांग्नू और कुछ अन्य लोग भी थे। लौटते समय वे हांगलगुंड और ब्रारि आंगन में उमा नगरी के तीर्थ पर रुके जहां त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र को समर्पित तीन पवित्र जलकुण्ड हैं। दूसरी बार उनके साथ तेरह लोगों का बड़ा दल था जिसमें उनकी बड़ी बहन देव माली भी थी। श्रीनगर से पहलगाम तक सभी बस से गये और फिर टट्टू किराये पर लिये गये। स्वयं वे पैदल ही चले और अपनी बड़ी बहन देवमाली से भी पैदल चलने के लिये कहा। वे नहीं मानी और टट्टू पर बैठ गई। कुछ ही दूरी के बाद वे टट्टू से गिर पड़ीं और फिर उन्हें पैदल ही यात्रा करनी पड़ी। 'दर्शन' के दिन भगवान जी और दल के कुछ अन्य लोग 'शिवलिंग' से थोड़ा नीचे ही रुके। उन सबने भगवान जी को ऊपर की ओर ताकते देखा जहां शिव, पार्वती और गणेश की तीन मूर्तियां साफ-साफ दिखाई दे रही थीं। वहीं बैठकर उन्होंने एक नारियल फिरन के अन्दर रखकर बगल में दबा लिया। वह नारियल उनकी बगल के नीच से ही अदृश्य हो गया।

श्रीनगर शहर के पांच किलोमीटर दक्षिण में स्थित ज्येष्ठा भगवती के तीर्थ को भी वे बहुत मानते थे। यह तीर्थ श्रीनगर छावनी के पास ही थोड़ी ऊंचाई पर स्थित है। यहां वे अकसर दो तीन रातें गुज़ारा करते थे। तीर्थ के पास ही जम्मू व कश्मीर के महाराजा का महल गुलाब भवन है। महल के पास से ही तीर्थ की ओर रास्ता जाता है जो आम रास्ते से छोटा पड़ता है। एक दिन तत्कालीन महाराजा हरिसिंह के

आदेशानुसार यह रास्ता कंटीले तार से बंद कर दिया गया। एक रात बहुत बर्फ गिर रही थी। भगवान जी अपने एक भक्त के साथ तीर्थ की ओर चल दिये। वहां उन्होंने पाया कि छोटा रास्ता बंद पड़ा है। दोनों को तीर्थ स्थल की ओर जाने के लिए तार के नीचे से रेंगकर निकलना पड़ा। कंटीले तार से हुई इस असुविधा ने भगवान जी को यह कहने के लिये प्रेरित किया कि महाराजा को सिंहासन छोड़ना पड़ेगा। इसके कुछ ही वर्षों बाद महाराजा को पाकिस्तानी कबाइलियों के हमले के कारण सिंहासन ही नहीं कश्मीर भी छोड़ना पड़ा।

भगवान जी और उनका वह भक्त रात भर पञ्चस्तवी का पाठ करते रहे। पंचस्तवी एक बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसमें मां भगवती त्रिपुरसुन्दरी की प्रशस्ति में पांच स्तुतियां या 'स्तव' दिये गये है। भक्त ने इच्छा प्रकट की थी कि वह ज्येष्ठा भगवती के दर्शन करना चाहता है। सुबह के लगभग चार बजे जब वे चौथे स्तव 'अम्बस्तव' का पाठ कर रहे थे तो भगवान जी ने भक्त से कहा कि वह पवित्र जल स्त्रोत की ओर देखे। भक्त ने ज्योंही उस ओर देखा, उसे लगा जैसे कई सूर्य एक साथ चमक उठे हों। उसकी आंखें चौंधिया गईं और वह अंधा सा हो गया। भगवान जी ने उसे तुरंत आंखे फेर लेने के लिये कहा क्योंकि वास्तव में अंधा हो जाने का खतरा था। इस तीर्थ पर मांसाहारी व्यंजनों का चढ़ावा चढ़ता है। लोग हल्दी और भेड़ की कलेजी डाल कर पकाये गये पीले चावल यहां चढ़ाते हैं जिसे कश्मीरी में तहर च़र्वन कहते हैं। एक बार कुछ तीर्थ यात्रियों ने पूजा करने के बाद 'तहर-च़र्वन' का यह प्रसाद भगवान जी को भी दिया। भगवान जी वह प्रसाद खाने लगे। तभी एक साधु आया और सभी को इस मांसाहारी चढ़ावे के लिये कोसने लगा। उसके अनुसार इस पापकर्म से मंदिर अपवित्र हो गया था। भगवन जी उसके इस व्यवहार से बहुत नाराज़

हुये और उसे शाप दे दिया, "पेयिनय शुतुल्य-बुड" अर्थात 'जा तुझ पर शीतला माई (चेचक) का प्रकोप हो। कुछ देर बाद उस साधु को बुखार आ गया और शरीर पर चेचक के फफोले उभर आये। वह पछताने लगा और भगवान जी से क्षमा की भीख मांगने लगा। भगवान जी ने उसे तीर्थस्थल से तुरंत चले जाने का आदेश दिया और आश्वस्त किया कि कुछ दिनों में वह ठीक हो जायेगा।

श्रीनगर से नौ मील दूर प्रसिद्ध निशात बाग के निकट डल झील के किनारे 'गुप्तगंगा' का तीर्थ है। भगवान जी हर साल दो तीन दिन के लिये यहां आते थे पर 1949 में उन्होंने लगभग नौ महीने यहां गुज़ारे। उन दिनों उनकी धूनी में लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठे जला करते थे। तब वे 'शिव' की कठिन साधना कर रहे होंगे और चूंकि गंगा का संबंध शिव से है इसलिये 'गुप्त गंगा' को उन्होंने अपनी आध्यात्मिक क्रिया के लिये चुना होगा। जिस कमरे में वे रहते थे वह कमरा भी एक तीर्थ स्थल बन गया। श्री संजय नेहरू बताते हैं कि 1996 में बैसाखी के दिन भगवान जी के कुछ निकट संबंधियों के साथ जब वह वहां गये थे तो वह कमरा साफ-सुथरी लिपी-पुती दीवारों के साथ वैसा ही था जैसा भगवान जी छोड़ गये होंगे। उनकी एक समकालीन संत राधा देवी भी वहां उनसे मिलने आती थीं। भगवान जी ने उन्हें परामर्श दिया था कि इधर-उधर न घूमकर एक ही जगह टिकी रहें और सत्य का अन्वेषण करें। संत राधा देवी ने ऐसा ही किया और इस संसार में अपनी अंतिम सांस तक अपने कमरे से बाहर नहीं निकलीं।

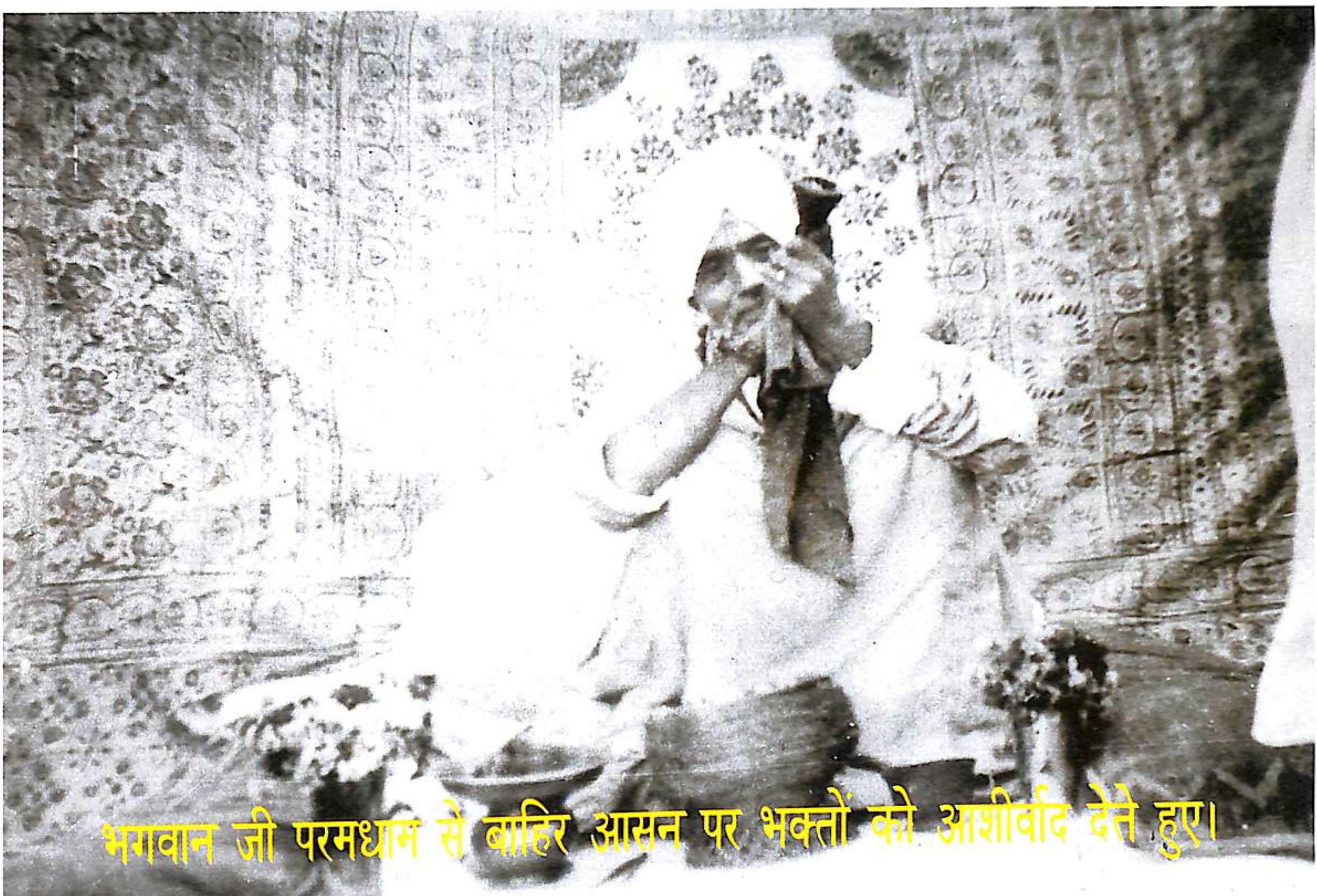
श्रीनगर से 100 कि.मी. उत्तर में हन्दवारा तहसील में 'भद्रकाली' का प्रसिद्ध तीर्थ है। 1962 में कुछ समय तुलमुल में गुज़ारने के बाद भगवान जी अपने कुछ भक्तों, बहन और स्वामी अमृतानंद के साथ भद्रकाली गये। मंदिर के नीचे ही एक

खुले मैदान में भगवान जी ने धूनी रमाई। उन्होंने भक्तों से कहा कि वे चले जायें क्योंकि उत्तर से भयंकर तूफान आने वाला है। केवल उनकी बहन और स्वामी अमृतानंद उनके पास रुके रहे। कुछ समय के बाद ही उत्तर दिशा से लद्दाख पर चीनी आक्रमण हुआ।

कश्मीर में आठ भैरवों के आठ मन्दिर हैं। इनमें से एक है 'तुरूष्कराज भैरव' जो श्रीनगर शहर के करण नगर के नरसिंहगढ़ इलाके में है। तुरूष्कराज का अर्थ है 'तुरूष्कों का राजा' तुरूष्क राजवंश ने कुछ समय तक कश्मीर पर शासन किया था। यह तीर्थ एक छोटे से जलमार्ग 'दूधगंगा' के किनारे स्थित है। भगवान जी इस स्थान को साधना के लिये शुभ मानते थे। वहां का वातावरण भी बहुत शांत और पवित्र है। भगवान जी हर वर्ष तीन चार दिनों तक अकेले ही यहां रहते थे। कहते हैं कि अतीत में भी यहां कई संत रह चुके हैं। अपने मित्र भोला नाथ हंडु और उनकी पुत्री के परिवार के साथ एक बार उन्होंने गौतमनाग के तीर्थ की यात्रा भी की। यहां मांसाहारी व्यंजन लाना वर्जित है परन्तु भगवान जी के कहने पर मछली पका कर साथ ले ली गई। दर्शन करके सभी पवित्र जलकुण्ड के पास बैठकर मछली भात खाने लगे। मन्दिर के प्रभारी स्वामी गाश काक जी बहुत नाराज़ हुये। विशेषकर भगवान जी पर उन्हें बहुत गुस्सा आया कि उन जैसा संत भी तीर्थस्थलों के नियम तोड़ने को प्रोत्साहन देता है। भगवान जी ने शांति से कहा कि उन्होंने तो मछली खाई ही नहीं। गाशकाक और भी क्रोधित होकर बोले कि तुम जैसा संत ही झूठ बोलेगा तो दुनिया क्या करेगी। भगवान जी ने मुंह में दो उंगलिया डाली और दो जीवित मछलियां उनके मुंह से निकल कर पवित्र जलस्त्रोत में कूदकर तैरने लगी। गाशकाक जी स्तब्ध रह गये और उन्होंने साष्टांग दंडवत करते हुये भगवाव जी से क्षमा मांगी।

एक बार भगवान जी त्रिसंध्या गये। वहां एक सुरंग जैसा जल स्त्रोत है। यों तो वह सूखा ही रहता है पर केवल वहां जाने वाले त्योहार के दिनों में ही दिन में दो बार इसमें से पानी निकलता है। भगवान जी वहां गये तो पानी लगभग आठ बार निकला। तभी एक औरत आई और उसने पवित्र जलस्त्रोत में स्नान करने की इच्छा प्रकट की। जितनी बार वह जल स्त्रोत के पास गई उतनी बार वह सूख गया। उसने भगवान जी से हस्तक्षेप की प्रार्थना की। भगवान जी ने गुस्से से उसे याद दिलाया कि जब उसके घर में आग लगी थी तो उसने गायों को बाड़े से बाहर निकालने की परवाह नहीं की थी। सभी गायें ज़िन्दा जल गई थीं। वह 'गौहत्या' के पाप से ग्रस्त थी और इसलिये त्रिसन्ध्या के पवित्र जल में स्नान करने की आज्ञा उसे नहीं मिल रही थी। औरत के जाते ही स्त्रोत से पानी फिर निकल आया।

कश्मीरी में कहते हैं 'त्रिसंध्या रुद्र संध्या, पवन संध्या कर ज़िहे – अदय मर ज़िहे तोति कें छाह' अर्थात मनुष्य त्रि, रुद्र और पवन तीनों संध्याओं की यात्रा करके मृत्यु को प्राप्त हो तो भाग्यशाली है। बब भगवान अन्य तीर्थस्थलों, महादेव, विचार नाग आदि पर भी जाते थे। विचार नाग की यात्रा चैत्र अमावस्या को की जाती है और तुलमुल जाते समय भी वहां पहले स्नान पूजा अर्चना करने की प्रथा है। क्यों न हो, 'क्रिया' से पूर्व 'विचार' का होना परम आवश्यक है।



भगवान जी परमधाम से बाहिर आसन पर भक्तों को आशीर्वाद देते हुए।

6

स्थान परिवर्तन एवं आध्यात्मिक उत्थान

अनेक जन्म संसिद्धः ततो याति परां गतिं।

(अनेक जन्मों की साधना से तपकर परम गति प्राप्त होती है।)

भगवान जी ने अपने जीवन काल में लगभग दस बार अपना निवास बदला। निवास के साथ-साथ उनकी साधना पद्धतियां भी बदलती रहीं। बचपन और लड़कपन उन्होंने अपने घर में (9 वर्ष), पं. शिव जी खैबरी (डेढ़ वर्ष), केशव जू नगरी (3 वर्ष) और कैलाश जू भान (डेढ़ वर्ष) के घरों में गुज़ारे। इस दौरान उनकी मां का स्वर्गवास हुआ और उन्होंने स्कूली शिक्षा भी प्राप्त की। युवावस्था में अपनी ननिहाल (7 वर्ष), केशव जू धर (3 वर्ष) और दीनानाथ बोटा (6 वर्ष) के घरों में अनुभवों की विविधता प्राप्त करने के साथ-साथ उनका आध्यात्मिक संघर्ष भी चरमोत्कर्ष को पहुंचा। उसके बाद वे आध्यात्मिकता की जिन ऊंचाईयों पर पहुँचें उसका पता सारी दुनिया को है। जिन घरों में वे रहे उनमें से तीन को छोड़कर कोई भी उनका रक्त संबंधी न था। अधिकतर उनके भक्त थे जो उनकी दिव्य उपस्थिति से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करना चाहते थे और उन्हें अपने घरों में पाकर स्वयं को धन्य समझते थे।

उनके अपने हाथ से लिखी हुई, गणेश, गुरु, मां भगवती, नारायण और शिव की पांच स्तुतियां मौजूद हैं। शारदा लिपि में दो बड़े बड़े ओंकार बनाकर एक के इर्द गिर्द राम का नाम और दूसरे के इर्द गिर्द शिव का नाम उन्होंने स्वयं लिखा है। शारदा लिपि में अपने हाथ से लिखी हुई गुरु स्तुति और एक तांत्रिक मंत्र भी वे छोड़ गये हैं। इससे पता चलता है कि उन्होंने साधना के कई मार्ग अपनाए।

शक्ति और शिव दोनों की उपासना उन्होंने की। मां भगवती ने उन्हें दर्शन भी दिये परन्तु 'भक्ति मार्ग' उन्हें अपने स्वभाव के अनुकूल नहीं लगा। जो पद्धति उन्होंने चुनी उसमें उत्कृष्ट तपस्या, आंतरिक अन्वेषण, इन्द्रियों पर वश एवं आठों तत्वों पर अधिकार आवश्यक था। श्री गीता में भगवान ने इन आठों तत्वों भूमि, जल, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार को अपनी अपरा प्रकृति की संज्ञा दी है। इस से भिन्न जो उनकी परा प्रकृति है उसी से वे जीव भूतात्मक इस जगत को धारण करते हैं।

1930 में उनके आध्यात्मिक जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। वे रंग टेंग के पंडित टिकालाल के घर में रहने के लिये गये और वहां उन्होंने लगभग सात वर्ष गुज़ारे। वहीं उन्होंने कठिन साधना की। वे बिस्तर पर लेटे सामने की दीवार को देखते रहते। कमरे में एक दीपक जलता रहता था। उनकी बहन की छोटी बेटी चांदा जी के अतिरिक्त कमरे में किसी को भी आने की आज्ञा नहीं थी। कमरे की हर चीज़ पर धूल की परतें जम जातीं। छत पर और दीवारों के कोनों पर मकड़ियों के जाले ही जाले हो जाते और मकड़ियां इधर उधर घूमती रहतीं पर वे किसी को भी कमरा साफ करने न देते। इस कठिन साधना के दौरान वे मुट्ठी भर धतूरे के बीज, अफीम और अन्य मादक पदार्थों का सेवन करते। इस आध्यात्मिक कर्म में थोड़ा सा भी व्यवधान उन्हें पसन्द नहीं था। वे महीनों उपवास करते और फिर एक साथ ज़्यादा सा खाना खा लेते। आखिकार भगवान जी वह बनकर निकले जो उन्हें बनना था। कई बरसों की कठिन साधना के बाद शरीर निर्बल हो गया था पर वे अद्वितीय आध्यात्मिक शक्ति से भरपूर थे।

उन्हें त्रिकाल दृष्टि प्राप्त हुई और वे पूर्ण संत बने। परमात्मा से एकात्म होकर वे जगदगुरु बने। इसे ही कश्मीरी शैव दर्शन में शाम्भवी अवस्था कहा जाता है। पांचवी शताब्दी के ईसाई संत डायोनिसियस ने भी माना है कि परम तत्व किसी भी दृष्टि से साधक से अलग नहीं है। अपनी बुद्धि और मन को स्थिर करके साधक परम तत्व से एकात्म हो जाता है। ऐसा ही व्यक्ति सारे संसार में समरसता स्थापित करने के महायज्ञ का शुभारम्भ करता है और जाति-धर्म के भेद से ऊपर उठकर हर व्यक्ति को परमात्मा का रास्ता दिखाता है।

1937 में भगवान जी अपने भाई और बहन के साथ डलहसनयार के पं. नील कौल सराफ के घर में रहने को आये। वहां उन्होंने दस साल गुज़ारे। मकान की दूसरी मंज़िल पर खिड़की के पास उन्होंने आसन जमाया। यहां से हारी पवर्त और शंकराचार्य की पहाड़ी साफ साफ दिखाई देते थे। लगता था कि भगवान जी शिव और शक्ति से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखना चाहते थे। शंकराचार्य पहाड़ी पर बने मंदिर में 'लिंगम्' है जो ब्रह्मांड का प्रतीक है और हारी पर्वत के शक्ति पीठ में 'श्रीचक्र' है जो परम तत्व और उसकी बनाई सृष्टि के अंतर्सम्बंध का प्रतीक है। इन दोनों से ब्रह्मांड अपनी पूर्णता में चित्रित होता है। कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार भी 'प्रकाश रूप शिव' और इसकी अभिन्न 'विमर्श रूप शक्ति' दोनों मिलकर सृष्टि का कारण बनते हैं। यह शिव की लीला का ही परिणाम है।

सभी जानते हैं कि 'मनु स्मृति' में मानव जीवन को चार भागों में बांटा गया है - ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। परन्तु भगवान जी जैसे संतों के जीवन के तीन ही भाग होते हैं - साधना (जब उपलब्धियों के लिये क्रिया होती है), प्राप्ति (जब उपलब्धियां प्राप्त हो जाती है) और अनुग्रह (लोगों पर कृपादृष्टि डालकर

उनका भला करना)। अनुग्रह का समय उनके जीवन में 1937 से आरम्भ हुआ और तीस वर्ष से अधिक समय तक जारी रहा।

उन्होंने कई शिष्यों को दीक्षा दी जिनमें कश्मीर के बाहर से आये एक सिक्ख संत भी थे। मलपोरा के पं. महेश्वर नाथ जुत्शी को मां भगवती ने निर्देश दिया था कि वे भगवान जी से आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करें। भगवान जी ने उन्हें भोजन करवाया, कुछ पीने को दिया और अपनी चिलम में से एक कश लगवाया। बस! जुत्शी साहब जो प्राप्त करना चाहते थे उन्हें वह मिल गया। भगवान जी से बहुत पहले एक महान संत कृष्ण कार को परमात्मा ने निर्देश दिया कि वे ऋषि पीर को दीक्षा दें। कृष्ण कार ऋषि पीर के घर गये तो वे वहां नहीं थे। उन्होंने एक बार उनका हुक्का गुड़गुड़ाया और यह कहकर चले गये कि हुक्के पर रखी चिलम को कोई हाथ तक न लगाये। ऋषि पीर आये तो उन्होंने हुक्का गुड़गुड़ाया। इसी से वे दीक्षित हो गये। भगवान जी भी शिष्यों को दीक्षित करने के लिये यही तरीका इस्तेमाल करते थे। कभी कभी वे किसी अदृश्य व्यक्ति से बातें करते, कभी प्रश्नों का परोक्ष उत्तर देते और कभी अपने में ही मग्न हो जाते। हारी पर्वत वे तब भी जाते थे और कुछ घंटों तक वहां रहते। तुलमुल में भी कभी कभी दूध और फूल चढ़ा आते थे। वहां नदी में स्नान करने की प्रथा थी पर वे ऐसा न करके सीधे ही एक झोपड़ी में चले जाते और चिलम पीते रहते। इस दौरान उन्होंने आहुतियां डालने के लिये कांगड़ी का प्रयोग करना शुरू कर दिया। कांगड़ी का प्रयोग सर्दियों में शरीर को गर्म रखने के लिये किया जाता है। पर वे घंटों इसमें आहुतियां डालते रहते।

1947 में भगवान जी डलहसानयार से ऋषि मोहल्ला में पं. माधव जू सत्थू के घर में आये। पं. माधव जू भगवान जी की भांजी चांदा जी के पति थे। यहां दस साल

रहकर उन्होंने अनगिनत लोगों के दुख दूर किये और कई चमत्कार भी किये। यहां भी वे पूरा ध्यान केन्द्रित करके आग में फूंक मारते रहते। कई बार दहकती हुई चिंगारियां उनके कपड़ों पर गिर जाती और बड़े बड़े छेद हो जाते। पर उन्हें इसकी क्या परवाह होती। यह तो अग्नितत्व पर ध्यान केन्द्रित करने की आध्यात्मिक प्रक्रिया थी। यूनानी दार्शनिक हेराल्किट्स ने भी अग्नि को आधारभूत तत्त्व बताया है। वेद भी अग्नि को केन्द्रीय तत्व मानते हैं। इसे इन्द्र के पश्चात सर्वोपरि रखा गया है।

इस दौरान उनका जन्मदिन भी धूमधाम से मनाया जाता था। उनके भक्तों का कहना है कि इस दिन पांच सौ से भी अधिक लोग उनके यहां खाना खाते थे। उनके परिवार के कुल पुरोहित पूजा करते और भगवान जी स्वयं धूनी में आहुतियां डालते रहते। संतूर और अन्य वाद्यों के साथ शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम होता जो अगले दिन सुबह तक चलता रहता। समारोह में उपस्थित सभी लोगों को वे स्वयं तिलक लगाते और मिश्री के प्रसाद के साथ साथ पवित्र अग्नि की भस्म की एक चुटकी भी दे देते थे।

1957 में भगवान जी की भांजी कमला जी के पति का देहांत हुआ। कमला जी तो पहले ही गुज़र चुकी थीं। उनकी छोटी बेटी किशनी भगवान जी के पास आकर बोली कि माता-पिता दोनों के गुज़र जाने के बाद वे अनाथ महसूस कर रहे हैं और उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। उन्होंने तुरंत अपनी 'चिलम' उठाई, कंधों पर कम्बल रखा और अपनी बड़ी बहन देवमाली के साथ चन्दपुरा चले गये जहां भांजी का घर था। इसी घर में 1968 में उन्होंने अपना स्थूल शरीर छोड़ा। यहां एक लोहे की सिगड़ी में उन्होंने धूनी प्रज्ज्वलित की। यह धूनी सुबह से शाम तक जलती रहती थी। साथ ही एक चौड़े मुंह के, पकाई हुई मिट्टी के गोल बर्तन को वे

पानी से भर देते थे। उसके ऊपर एक पीतल की चिलमची रखते थे जिसमें धातु का एक गिलास रखा रहता था। दोनों में पानी भरा रहता था। उनकी दृष्टि लगातार इसी पर जमी रहती थी मानो वे पृथ्वी और अग्नि के बाद इस तीसरे आधारभूत तत्व के सार तक पहुंच रहे हों। यहां पर कमला जी की बहू का वर्णन अवश्य होना चाहिए, श्रीमती प्यारी जी श्रीमती देवमाली की देख रेख में भगवान जी तथा वहां आने वाले यात्रियों की सेवा में हमेशा तत्पर थी और श्रीमती देवमाली के स्वर्गवास होने पर यह जिम्मेवारी उसने बड़ी श्रद्धा तथा धैर्य से निभाई। 28 मई 1968 के पश्चात एक साल की कर्मकाण्ड की क्रियाओं में उसने बड़ी सूझबूझ से हिस्सा लिया।

यह सर्वविदित है कि भारत के दार्शनिक प्राचीन काल से ही आठ तत्वों की अवधारना करते आये हैं परन्तु यूनान के दार्शनिक थेल्ज़ (620 से 550 ईसा पूर्व) जो मिलेटस के वासी थे, का मानना था कि जल ही एक मात्र तत्व है। सब कुछ इसी से बनता है यहां तक कि पृथ्वी भी जल पर ही टिकी है।

लगातार चिलम पीते हुये वे वायु तत्व पर भी ध्यान केंद्रित कर रहे होते थे जिसके बारे में एक और यूनानी दार्शनिक अनक्सिमेनेस (570 – 510 ईसा पूर्व) ने कहा है कि यही मूल तत्व है। उसका मानना था कि आत्मा भी वायु ही है, अग्नि कम दबाव वाली हवा है और वायु के जम जाने से जल बनता है। संस्कृत में आत्मा का शब्द 'एटमोस' से मिलता है जिससे 'एटमोसफियर' अर्थात वातावरण का शब्द बना है। चिलम पीते हुये भगवान जी आमतौर पर आकाश पर नज़र जमाये रहते। इससे स्पष्ट होता है कि आकाश तत्व भी उनके ध्यान का केन्द्र था। हर क्षण इस संसार में रहकर भी वे इस संसार के आधारभूत तत्वों पर नियंत्रण के लिये निरंतर कर्मशील रहते थे। शेष तीन तत्वों मन, बुद्धि और अहंकार पर भी उनका नियंत्रण था। नहीं तो

वे कभी भी आने वाली घटनाओं के बारे में बोल न पाते, न खतरनाक बीमारियां ठीक कर पाते और न ही किसी की मृत्यु को टाल पाते। इन तीन तत्वों पर नियंत्रण से ही उन्होंने काल को भी जीत लिया और अपने स्थूल शरीर की सीमाओं का ऐसा विस्तार किया कि वे स्वयं भगवान ही बन गए। इस तरह भारतीय दर्शन में बताये गये, जगत के आधारभूत आठ तत्वों पर उनका नियंत्रण था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जगत उनका विस्तार था और वे जगत के सार थे। भगवान जी के पास आने वाले साधुओं में से कुछ का आध्यात्मिक स्तर बहुत ऊँचा था। उनमें से कुछ भगवान जी को सिद्ध मानते थे और कुछ योगी। भगवद्गीता के अनुसार योग के चार प्रकार हैं - राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग।

निष्ठा के दो प्रकार हैं - ज्ञान और कर्म। भगवान जी के जीवन पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि 'ज्ञान' ही उनकी निष्ठा थी। योग तो उन्होंने चारों प्रकार का आजमाया था। तीर्थ यात्रायें और मां भगवती का साक्षात्कार होना जहां उनकी भक्ति के द्योतक हैं, वहीं धूनी की पवित्र अग्नि में आहुतियां देना उनके कर्मयोग को दर्शाता है। कभी कभी बिल्कुल अकेले रहना और कठिन साधना करना, ज्ञान को लेकर उनके प्रयोगों की ओर इशारा करते हैं। भावातिरेक में उत्तेजित हो जाना, घुमा फिराकर बात करना और कभी कभी सूक्ष्म शरीर के साथ एक ही समय पर कई स्थानों पर मौजूद रहना राज योग के प्रयोग हैं। यह सब जानते हुये भी साधारण मनुष्य उनकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि की कल्पना तक नहीं कर सकता।

परन्तु यह स्पष्ट है कि इसी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि, इसी ज्ञान से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया था। कहा भी गया है, 'ज्ञानेनचापवर्गो' - ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म से आध्यात्म की ऊँचाइयां मिलती है - 'धर्मेण गमनम् ऊर्ध्वम्'।

अधर्म से अध: पतन होता है - गमनमधस्तद् भवति अधर्मेण। वासना से मनुष्य पाप और पुण्य के बंधन में बंध जाता है 'विपर्ययदिन्यते बंध:'। इन सभी बातों को भली भांति जानते हुये भगवान जी ने अपने अंत:करण को वासना रहित कर दिया था। उनका मन और आत्मा स्वाभाविक रूप से ब्रह्म की ओर आकर्षित एवं केन्द्रित थे। वे जीवन मुक्त थे। उनका अस्तित्व द्वन्दातीत था। वे सत् और असत्, लाभ हानि, सत्य और असत्य, प्रेम और घृणा की परिधि को लांघ चुके थे। उनका जीवन वास्तव में 'पद्मपत्रमिव अम्बसा' जल में कमल पत्र जैसा था - निश्कलंक निर्मल एवं निश्प्रपंच। उन्होंने माया के पांच तत्वों को भी नियंत्रण में कर लिया था। ये तत्व है - 1. विद्या जो सीमित ज्ञान का प्रतिनिधित्व करती है, 2. कला जो कर्म की सीमाओं की प्रतिनिधि है 3. राग जो अपूर्णता का प्रतिनिधि है 4. काल जो अस्थायित्व का प्रतिनिधि है और 5. नियति जो अंतरिक्ष की सीमाओं की द्योतक है। उन्होंने पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली थी जिसके पांच अंग है -

1. चित् अर्थात सब कुछ जानने की स्थिति।
2. निर्वृत्ति अर्थात कर्म की असीमता की स्थिति।
3. इच्छा अर्थात पूर्णता
4. ज्ञान अर्थात स्थायित्व और
5. क्रिया जो सार्वभौमिकता का प्रतिनिधित्व करती है।

पूर्ण मुक्त संत ही सभी तत्वों को नियंत्रित कर सकता है। ऐसा संत केवल वर्तमान में नहीं बल्कि अनंतता में वास करता है। जो अनंतता में वास करे त्रिकालदर्शी होना उसके लिये कठिन नहीं होता। यदि हम इस स्थिति की कल्पना कर सकें तो भगवान जी के व्यक्तित्व का हल्का सा आभास मिल ही जायेगा।

त्रिक दर्शन साधक के लिए साधना की तीन विधियां बताता है -

1. शाम्भव विधि : इस विधि में ज्ञान, ध्यान और चिंतन से मन पर ज़ोर नहीं डाला जाता बल्कि सत्य के प्रत्यक्ष बोध के लिए क्रिया की जाती है।

2. शाक्त विधि : इसमें अपने अस्तित्व के सार तत्व के चिंतन को लेकर ध्यान जैसी क्रियाएं की जाती है।

3. आणव विधि : यहां इन्द्रियों, जीवनी शक्ति, भौतिक रूप, नाड़ी केन्द्रों, श्वास, काल और अंतरिक्ष के कई पक्षों पर ध्यान किया जाता है। योग की एक और विधि भी है जिसे 'अनुपाय' कहते हैं। जबकि शाम्भवोपाय में विकल्प के लिये कोई स्थान नहीं है और शाक्तोपाय में पूरी शक्ति से ध्यान केन्द्रित करना होता है, आणवोपाय में मंत्रों की सहायता से श्वास पर नियंत्रण करना होता है। साधक कर्म करता है मगर निर्लिप्त है। वह सीधे ही शिव के चिरन्तन आनन्द से जुड़ जाता है। भगवान जी के बारे में जो भी तथ्य ज्ञात हैं उनसे यही पता चलता है कि वे 'अनुपाय' साधक थे क्योंकि वे कर्म करते हुये भी नहीं करते थे और हर समय शिव से एकात्म रहते थे। कुल मिलाकर साधना की लगभग सभी पद्धतियों और विधियों से आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करके उन्होंने अपना एक मार्ग प्रशस्त किया था। उनकी साधना पद्धति की व्याख्या सभी पद्धतियों के आधार पर की जा सकती है परन्तु फिर भी वह उनकी अपनी पद्धति है। वास्तविक व्याख्या स्वयं भगवान जी ही कर सकते हैं।

हर साधक दो प्रमुख मार्गों में से अपनी साधना का पथ चुनता है। एक मार्ग है पूर्ण निर्लिप्तता का जिसे निवृत्ति मार्ग कहते है। दूसरा मार्ग है प्रवृत्ति मार्ग। यह गृहस्थ

साधक का मार्ग है जो गृहस्थी और संसार में पूरी तरह से लिप्त रहकर साधना करता है। भगवान जी का मार्ग उनका अपना ही था। वे घर में रहते हुये भी निर्लिप्त थे। उनका मार्ग प्रवृत्ति और निवृत्ति का संगम था। इसे 'गोपीनाथ मार्ग' या 'गोपीनाथ पद्धति' कहा जा सकता है।



परमधाम का सम्पूर्ण दृश्य

7
ध्येय की प्राप्ति

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

(ओम के अद्वितीय और सनातन अक्षर से अभिव्यक्त होने वाले ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ, मुझे याद करता हुआ जो शरीर को छोड़ देता है उसे परम गति मिलती है।)

काश्मीर के एक सुप्रसिद्ध फारसी कवि ने लिखा है "चु शमा मंज़िले मा बा पाये मा" - एक जलती मोमबत्ती की तरह जैसे मेरा गंतव्य मेरे पांव तले है। तात्पर्य यह कि उद्देश्य प्राप्ति के लिये कहीं जाने की आवश्यकता नहीं होती। आचार्य अभिनवगुप्त ने इसी भाव को ऐसे व्यक्त किया है - "मोक्षस्य नैव किंचिद धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र" - मोक्ष के लिये कोई स्थान निर्धारित नहीं और नहीं कहीं जाने की ज़रूरत।" चीनी दार्शनिक लाऊत्ज़ू ने भी कुछ ऐसे ही विचारों को व्यक्त किया है जब उन्होंने कहा है कि एक संत यात्रा किये बिना ही गंतव्य पर पहुंच जाता है। ऐसा ही कुछ भगवान जी पर चरितार्थ होता है।

साधना से अपनी चेतना का विस्तार करते करते भगवान जी उस स्थिति में पहुंच गये जहां सारा संसार ही उन्हें अपना विस्तार लगने लगा। वस्तुओं में भेद समाप्त हो गया। सब उन्हीं में स्थित है और वे ही सब में विद्यमान हैं। अपनी जगह बैठे बैठे ही उन्हें पूरे संसार का ज्ञान प्राप्त हो जाता था।

उन्होंने एक जगह आसन जमा लिया। हर समय वे वहीं बैठे रहते थे। शुरू में

उनके पीछे एक मसनद और दाई ओर एक तकिया लगा रहता था। जरूरत पड़ने पर वे बाई ओर टांगे फैला लेते थे। लेकिन अपने महानिर्वाण से दो बरस पहले उन्होंने बाई ओर भी तकिये लगावा लिये। उनके आगे धूनी जलती रहती थी और वे आहुतियां डालते रहते थे। टांगे फैलाने या लेटने के लिये कोई जगह न थी। उनकी टांगे अकड़ जाती थी। वैसे भी वे अपनी टांगों को लकड़ी के लट्ठै समझते थे। कोई उनकी टांगे दबाता तो वे कहते, "क्या होगा इन लकड़ी के लट्ठों को दबाने से?" इस तरह बैठै बैठे उनके घुटने भी जम गये और खड़ा होना भी असंभव हो गया।

अपने भीतर ही ब्रह्म का साक्षात्कार करने की यह भारतीय परम्परा है। शरीर पर ही ध्यान दिया तो क्या किया। अपने अंदर झांकने का अवसर कैसे मिलेगा? जगह जगह घूमते रहे तो मन भी घूमता रहेगा। इसीलिये उन्होंने एक संत राधा देवी से भी एक ही स्थान पर आसन जमाने और परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिये कहा था।

वे कहने लगे थे कि अब तो बुढ़ापा आ गया है। सच ही तो था। शरीर होगा तो कौमार्य, यौवन और जरा जैसी स्थितियों से तो गुज़रेगा ही। परन्तु, उन जैसे महापुरूष के लिये बुढ़ापा आने के अहसास को प्रकट करना इस बात की ओर इशारा करता था कि वे बुढ़ापे के बाद की स्थिति यानी इस भौतिक शरीर को छोड़ कर परम तत्त्व से एकात्म होने के लिये स्वयं को तैयार कर रहे थे। भौतिक शरीर छोड़ने की भविष्य वाणी करना संतों के लिये कठिन नही है। कई संतों ने ऐसा किया है और भौतिक शरीर छोड़ने के बाद कई रहस्य उनके साथ जुड़े रहे। कश्मीर के एक संत पृथ्वी नाथ थे जो 'प्रथ मोत' कहलाते थे। उनके भक्त उनके भौतिक शरीर को श्मशान ले गये तो उन्हें पता चला कि वे कुछ घंटे पहले ही वहां पहुंचकर वह जगह

चुनकर गये थे जहां उनकी चिता बनाकर अंतिम संस्कार किया जाना था। उस जगह को उन्होंने स्वयं ही लीप कर साफ कर दिया था और वहां मौजूद लोगों को ताकीद की थी कि वह स्थान उनकी अंत्येष्टि के लिये सुरक्षित रख दिया जाये।

माता अलखेश्वरी रूप भवानी के समय तो चमत्कार ही हो गया। वे वास्कूर गांव में थीं जब उन्होंने अपने एक भक्त को श्रीनगर के सफाकदल इलाके में मौजूद अपने पुश्तैनी मकान पर भेजा। भक्त वहां पहुंचा तो देखकर हैरान रह गया कि लोग माता रूप भवानी की अर्थी उठाकर श्मशान ले जा रहे है। उसने लोगों से कहा कि उसे तो माता ने ही वास्कूर से यहां भेजा है तो उनका यहां शरीर छोड़ना कैसे संभव है? उसने उनसे प्रार्थना कि कि उसे माता का चेहरा दिखाया जाये। काफी ज़ोर देने पर लोग माने तो कपड़ा हटाकर देखा गया। वहां सिर्फ उनके बालों का एक गुच्छा था जिसे चांदी के बक्से में वास्कूर के तीर्थ में उनकी निशानी के तौर पर रखा गया।

लेकिन भगवान जी का अपना तरीका था, अपनी भाषा थी जिसमें उनके मौन, उनकी चुप्पी का अलग महत्व था। इस हिसाब से बुढ़ापा आने की बात तो मामूली सी लगती है और किसी ने इसे गम्भीरता से नहीं लिया। कौन चाहता है कि उसके रक्षक, उसके भगवान, बूढे हो जायें और उसके बाद एक दिन उसे छोड़कर चले जायें। इस ओर उन्होंने मई 1968 के कुछ पहले इशारा किया और तब भी किसी ने उसे गम्भीरता से नहीं लिया। उन्होंने कहा कि वे सभी कपड़े जो "मैंने" अभी तक पहने नहीं हैं बाहर निकाले जायें। उनके प्रिय शिष्य श्री प्राण नाथ कौल ने सभी कपड़े बाहर निकाले और उन्हें तरतीब से लगा दिया। कपड़े क्या, यह तो उनके भक्तों का प्यार था। कमीज़े, फिरन, पोछ, पगड़िया जो समय समय पर उनके भक्तों ने लाई थीं

और भीतर ही भीतर कल्पना की थी कि उनके भगवान ये कपड़े पहन कर कैसे लगेंगे। अभी तक भगवान जी ये कपड़े पहन नहीं पाये थे। पर अब समय आ गया था। कहा जाता है कि ये सभी कपड़े एक एक करके उन्होंने हर दिन पहने और अंत में बची एक सफेद पगड़ी जो उन्होंने इस संसार में अपने अंतिम दिन बांधी। भगवान कभी भक्तों को निराश नहीं करता। श्रद्धा से जो भी वस्तु अर्पित की जाये वह उसे पूरे स्नेह से ग्रहण करता है। एक सहज, सरल भक्त की यही आस्था होती है। यहां भगवान जी का निराला गणित हमारे सामने आता है। उनके भौतिक शरीर के लिये भक्तों ने जो कुछ दिया था उसे उन्होंने भौतिक जीवन के अंतिम दिन तक ग्रहण किया। किसी भक्त को निराश नही किया और न ही किसी का तिरस्कार किया।

यह एक अद्‌भुत आध्यात्मिक अनुभव है। साफ लगता है कि उन्हें पता था कि किस किसने उनके लिये क्या क्या दिया है। यानी वे भक्त भी उन्हें अपना ही हिस्सा लगते थे जिन्होंने ये वस्तुएं दी थीं। भगवान जी हमेशा इन लोगों के साथ रहते थे और उनकी भावनाओं के भी साक्षी रहा करते थे। सही समय पर उनके दिये हुये कपड़े उन्होंने निकलवाये और हैरानी की बात तो यह है कि ये कपड़े बराबर उतने थे जितने उनके भौतिक जीवन के बाकी दिन। अंतिम कपड़े का इस्तेमाल करके ही उन्होंने अपना भौतिक शरीर छोड़ा।

आदमी सोचने के लिये मजबूर हो जाता है कि वह इस संसार में आया है तो क्या उसके लिये सब कुछ निश्चित है, उसे क्या पहनना है, कब क्या खाना है, कब क्या करना है? पर शायद इन्सान अपने भीतर की दिव्यता को भुलाकर केवल भौतिकता पर ही ध्यान देता है और रास्ते से भटक जाता है। भगवान जी जैसे महात्मा

दिव्यत्व को भूलते नहीं और मानवता को रास्ता दिखाने के लिये पृथ्वी पर उपस्थित रहते हैं। बाकियों के लिये तो सिर्फ जीना मरना है हृदय का स्पंदन और सांसों का उतार चढ़ाव है। भगवान जी के लिये जीवन चिर स्थायी है, हृदय का नहीं पूरे ब्रह्मांड का स्पंदन है, जिसका न आरम्भ है न अन्त।

शरीर तो ऐसे संतों के लिये आध्यात्मिक उद्देश्यों को पूरा करने का एक साधन होता है। उद्देश्य पूरे हुये और वे शरीर छोड़कर परम तत्व में विलीन हो जाते हैं। शरीर का कर्म क्या है? चलते रहना, श्रम करना। परन्तु एक दिव्य पुरूष किसलिये श्रम करता है? इसलिये कि पवित्रता और दिव्यता संसार भर में फैले। इसीलिये शुरू से ही भगवान जी ने बहुत सारी तीर्थयात्राएं कीं और संतो से मिले। मन तो उनका परमात्मा से एकात्म था। लेकिन प्राणवायु का इस्तेमाल योगिक क्रियाओं में करके भी वे परम तत्व से एकात्म रहने की दिशा में ही काम करते थे। अपनी असीम बौद्धिक क्षमता से वे परम तत्व की व्यापकता को मापते रहते। सत्य और असत्य के अंतर को समझते रहते और इस बात का अनुभव प्राप्त करते रहते कि वह कौन सी वस्तु है जो कभी समाप्त नहीं होती, जो जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त है। इसीलिये खाने पीने, मुंह धोने, कपड़े बदलने और तिलक लगाने जैसी क्रियाएं वे यंत्र की तरह करते थे। नहाते भी कभी कभी ही थे। ये सब तो शरीर के लिये की जाने वाली क्रियाएं थी और शरीर का कितना महत्त्व है यह उनसे बेहतर कौन जान सकता था। देखने वालों को कभी कभी लगता था कि उनका शरीर या कुछ अंग सूजे हुये हैं, मगर कुछ देर बाद सूजन गायब हो जाती थी। शरीर कभी कभी बहुत कमज़ोर लगता था पर दिव्य तेज में कोई अंतर नहीं पड़ता था। भक्त लोग उनके शरीर की मालिश करते तो उन्हें एक दिव्य आभा, एक चमक दिखाई देती थी।

कभी कभी भगवान जी को ज्वर, मूत्र में रुकावट और चेहरे में सूजन वगैरा जैसे रोग हुये पर उन्होंने कभी कोई दवा नहीं खाई। शरीर होगा तो रोग भी होगा वे जानते थे। बीमार होने पर कभी कभी अपनी धूनी पर उबाला हुआ पानी या 'काहज़बान' नाम की यूनानी औषधि का सेवन करते थे। उनके पास गांजे की गोलियां भी रहती थीं जो वे एक विशेष तरीक़े से अपनेसामने तैयार करवाते थे। इस गांजे को वे अपनी चिलम में तम्बाकू के साथ इस्तेमाल किया करते थे। एक बार कई दिनों के उपवास के बाद जब उनसे खाना खाने के लिये कहा गया तो उन्होंने जवाब दिया कि अपनी चिलम से उन्हें सारा पोषण मिल रहा है, फिर खाना खाने की क्या जरूरत है। इस पृथ्वी पर अपने जीवन के अंतिम दो वर्षो में उन्होंने गांजे की इन गोलियों का इस्तेमाल भी बंद कर दिया था। संगीत सुनने का उनहें बेहद शौक थ। यह भी उन्होंने अपने अंतिम दिनों में छोड़ दिया। वे इस कदर निर्लिप्त हो गये थे कि जीवन भर की साथी अपनी 'धूनी' को भी उन्होंने सामने से हटाने के लिये कह दिया। शिष्यों को यह ठीक नहीं लगा और उन्होंने प्रार्थना की कि धूनी को तो रहने दें। तब भगवान जी ने धूनी को रहने दिया। ऐसा लगता है वे उस हर वस्तु से विदा ले रहे थे जो उनके भौतिक अस्तित्व का अंग बन चुकी थी। बाहरी दुनिया के अपने सब काम भी वे धीरे धीरे बन्द करते जा रहे थे और पूरी तरह से अंतर्मुखी होकर 'चित' पर ध्यान केन्द्रित कर रहे थे क्योंकि वहां शुद्ध चेतना का प्रवाह था, इस दुनिया की एक दूसरे से अलग असंख्य चीज़ें नहीं थीं, केवल एक परम तत्त्व था जिसमें और भगवान जी में शायद ही कोई अंतर रह गया था।

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष द्वितीय का दिन था। अंग्रेजी तारीख के अनुसार 28 मई 1968। अन्य दिनों की तरह यह दिन भी शुरू हुआ। रोज़ की तरह भगवान जी ने सारे

काम किये। दिन भर लोग उनके दर्शनों को आते रहे और प्रसाद के रूप में पवित्र भस्म के साथ उनका आशीर्वाद भी प्राप्त करते रहे। दोपहर में तीन साधु आये। भगवान जी ने हमेशा की तरह एक एक रूपये की दक्षिणा दी। इस दौरान वे लगातार चिलम पीते रहे। एक भक्त ने उनके लिये चाय बनाई पर उन्होंने पीने से इनकार कर दिया। उन्होंने एक पानी के गिलास में चीनी घोलने को कहा और फिर वह पानी पी गये। एक महिला सुबह को आई और उसने प्रसाद मांगा। भगवान जी ने प्राण नाथ को इशारा किया कि उसे प्रसाद दिया जाये। पर वह नहीं मानी। उसने कहा कि लेगी तो भगवान जी के हाथ से ही लेगी और प्रसाद लिये बिना वहां से हिली नहीं। आखिरकार भगवान जी ने अपनी जेब से कुछ सूखे मेवे निकाले और उसे दे दिये। उसने श्रद्धा से ग्रहण कर लिये। उसकी आंखें गीली हो गई पर चेहरे पर गर्व का भाव भी था कि आखिरकार भगवान जी ने उसे प्रसाद दे ही दिया। ऐसे ही दिन गुज़रा और शाम के पौने छह बज गये। भगवान जी अपने आसन पर बैठे हुये थे - वैसे ही शांत, चेहरे पर दिव्य तेज और कभी कभी सुनाई देने वाली उनकी आवाज़ में षडक्षर महामन्त्र गूंजा, "ओम् नमः शिवाय।" इसके साथ ही उनके भौतिक शरीर की आंखें सदा के लिये बंद हो गईं। भौतिक शरीर का त्याग करते समय इस महामंत्र का उच्चारण, भगवान जी के संदेश और उनके पूरे जीवन पर प्रकाश डालता है। उन्होंने सदा ही 'ओम्' के बीज मंत्र को काफी महत्व दिया। वे इसे ईश्वरत्व का कंठ कहते थे। ओम् ही वेदों और उपनिषदों का मर्म है। यह पूर्ण परमात्मा है। उसकी ऊर्जा और उसकी बनाई हुई हर चीज़ में उसकी उपस्थिति की अभिव्यक्ति है। शिव निर्गुण, निराकार ब्रह्म है जिसको प्राप्त करना आध्यात्मिक उपलब्धि की उच्चतम स्थिति है। जब हम नमः कहकर उसके सामने झुकते हैं तो हम स्वीकार करते हैं कि हमारा सीमित

अस्तित्व उस असीम परब्रह्म को प्राप्त करने के लिये बेकरार है। सच पूछा जाये तो हर प्रकार की आध्यात्मिक साधना देश–काल के बंधनों में जकड़े हुये 'मैं' से ऊपर उठकर एक असीम 'मैं' यानी परमतत्व से एकाकार होनी की कोशिश है। अपना भौतिक शरीर छोड़ते समय 'ओम् नमः शिवाय' के इस महामंत्र का उच्चारण करके भगवान जी ने स्पष्ट कर दिया कि उन्होंने उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर ली है और वे 'परम शिव' के साथ मिलकर 'परम शिव' ही हो गये हैं।

पर इस दुनिया में रहने वालों को भी अपना काम करना था। भक्त कैसे विश्वास करते कि उन्होंने शरीर छोड़ दिया है। एक डॉक्टर बुलाया गया। पर उसे भी वही कहना था जो हो चुका था, "भगवान जी शरीर छोड़ चुके हैं" - एक ऐसी घटना जिसपर इस दुनिया के किसी भी डाक्टर का बस नहीं है। आखिरकार वही करना पड़ा जो कोई नहीं चाहता था। दुनिया को खबर दे दी गई कि भगवान जी महानिर्वाण प्राप्त कर गये है। शोकग्रस्त लोगों की भारी भीड़ उनके दरवाजे पर जमा हो गई। कुछ लोगों ने उनके मुँह में चम्मच भर पानी डाला। निकट सम्बन्धी त्रिलोकी नाथ काचरू तथा श्री पुष्कर नाथ कौल ने पहले दिन की क्रियायें 29 मई को करी। सारी क्रियाओं के बाद उनके भौतिक शरीर को पूरी श्रद्धा और सम्मान के साथ करण नगर की श्मशान भूमि पर पहुंचाया गया। शव यात्रा के पीछे पीछे उनके हज़ारों भक्तों का जुलूस चल रहा था। राज्य सरकार के पुलिस का बैंड साथ बज रहा था। करण नगर की श्मशान भूमि एक छोटी सी नदी के किनारे पर स्थित है। इस नदी को दूध गंगा कहते हैं। यहीं 'तुरूष्कराज भैरव' का मंदिर भी है जहां भगवान जी साधना करने के लिये अकसर जाया करते थे। भजन गाये गये। स्तोत्रों का पाठ किया गया, मंत्र पढ़े गये और भगवान जी का भौतिक शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया गया। रात होते

होते सब कुछ समाप्त हो गया। वर्ष भर के कर्मकांड की जिम्मेदारी भगवान जी की भांजी श्रीमती कमला जी के पुत्र और श्रीमती देवकी देवी के पोते पं. जवाहर लाल मल्ला को सौंपी गई। पवित्र अस्थियों का एक भाग शादीपुर के संगम पर विसर्जित कर दिया गया। शादीपुर में वितस्ता और सिन्धु नदियों का संगम है। कश्मीरी पंडितों में किसी की मृत्यु के बाद अस्थियां यहीं प्रवाहित की जाती थीं। शादीपुर के संगम का कश्मीरी पंडितों के लिये वैसा ही महत्व है जैसा सभी हिन्दुओं के लिये इलाहाबाद के संगम का। भगवान जी की अस्थियों का कुछ भाग जनवरी 1969 को हरिद्वार ले जाकर गंगा में विसर्जित कर दिया गया। जो कार्य श्री जवाहिर लाल मल्ला व प्यारी जी तथा श्री प्राणनाथ कौल व रानी जी ने निभाया।

भगवद्गीता में दो शब्द मिलते हैं - क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। क्षेत्र शरीर और क्षेत्रज्ञ इस शरीर को जानने वाला। क्षेत्र के रूप में तो भगवान जी का अस्तित्व इस समय नहीं है मगर क्षेत्रज्ञ के रूप में वे उन असंख्य लोगों के दिलों में रहते हैं जो उन्हें बेहद प्यार करते हैं, उनके प्रति असीम श्रद्धा रखते हैं। उन लोगों की यादों में वे हमेशा मौजूद हैं जिनके दुख उन्होंने दूर किये। उन साधकों के अस्तित्व का वे अभिन्न अंग हैं जिनको उन्होंने आध्यात्मिक ऊंचाईयों पर पहुंचने का मार्ग दिखाया। जब सब लोग पवित्र अग्नि में उनके नाम की आहुतियां डालते हुये पूरी श्रद्धा और भक्ति से 'ओम् नमो भगवते गोपीनाथाय' का मंत्र पढ़ते है तो वे इस मंत्र के एक एक अक्षर और एक एक ध्वनि में उपस्थित होते हैं। सुननेवालों को संतोष मिलता है, असीम सुख मिलता है।

वे इस दुनिया में एक उद्देश्य लेकर आये थे। उन्हें अपनी आध्यात्मिक यात्रा पूरी करते करते अन्य लोगों को भी आध्यात्मिकता का रास्ता दिखाना था। साथ ही

लोगों के दुख भी दूर करने थे। देश-विदेश के सैकड़ों लोगों के अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनका सूक्ष्म शरीर अभी भी इस दुनिया में मौजूद है। लोगों ने उन्हें सपनों में देखा है और मनुष्य रूप में भी उनके दर्शन किये है। वे स्वयं भी कहा करते थे, "अमर छा मरान!" (अमर मरता है क्या?) जिस किसी ने भी शुद्ध और पवित्र मन से उनकी भक्ति की है उसे उन्होंने दर्शन दिये हैं और उसका मार्गदर्शन किया है।

ऐसा लगता है कि हमारा उनको भगवान जी के नाम से पुकारना सार्थक है। हम उन्हें किसी भी नाम से पुकार सकते थे, सन्यासी, योगी, स्वामी, बब, साधु परन्तु हम उन्हें बब भगवान ही बुलाना पसंद करते हैं। इन सम्बोधनों की एक परम्परा है। राम कृष्ण परम हंस और अरविंद को श्री कहकर पुकारा जाता है। विवेकानंद, लक्ष्मण जु, दयानंद सरस्वती, शिवानन्द आदि स्वामी की संज्ञा से जाने जाते है। कई महात्माओं को आचार्य, महर्षि या गुरुदेव कहकर सम्बोधित किया जाता है। परन्तु यह हमारे लिये बब यानी पालन हार पिता और भगवान अर्थात परम तत्व हैं। वे सर्वदा विद्यमान हैं हमारा पथ प्रदर्शन करने के लिये। हमारे ऊपर है कि हम उनकी इस सूक्ष्म उपस्थिति का कैसे लाभ उठायें।



असाधारण अवस्था में

8

दिव्य वचन

आनो भद्राः क्रत्वो यन्तु विश्वतः

(सद्विचार हर दिशा से हमारे पास आयें)

भगवान जी यों तो बहुत ही कम बोलते थे। कहा भी गया है, पंडिताः मित भाषिणः -ज्ञानी एवं पंडित बहुत कम बोलते हैं। फिर भी समय समय पर बिल्कुल ही संक्षेप में कही गई कुछ बातें उनके शिष्यों ने याद रखी है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कुछ बातें यहां दी जा रही हैं।

स्यज़र, पज़र तु शोज़र :- भगवान गोपीनाथ इन तीन गुणों को एक आदर्श मनुष्य के लिये जरूरी मानते थे। 'स्यज़र' कश्मीरी में सीधेपन को कहते हैं। सीधा व्यक्ति वह होता है जो खोटे कर्म न करता हो और हमेशा सदाचार से ही ज़िन्दगी बिताता हो। इन अर्थो में स्यज़र सदाचार का ही दूसरा नाम है। 'पज़र' भी कश्मीरी शब्द है जिसका अर्थ है सत्य या सत्यशीलता। आम कश्मीरी प्रयोग है, "पनुन स्यज़र तु पज़र यीनम बकार।" इसका अर्थ है कि अपना सदाचार और सत्यशीलता ही मेरे काम आयें। इनमें भगवान जी ने 'शोज़र' अर्थात शुद्धता को और मिला लिया है। 'शोज़र' से अर्थ मन और आचरण की शुद्धता का ही लिया जाता है।। श्री गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पदा के लिये दो दर्जन से अधिक गुणों को गिनाया गया है। इन में यह तीन गुण भी शामिल है। आर्जवम्, सत्यम् तथा सत्व संशुद्धि। भगवान जी ने केवल तीन गुण चुने हैं। कदाचिद् उनका मानना है कि यही तीन गुण प्रमुख हैं और शेष इनके भीतर में समाहित हैं। भगवान जी ने एक आदर्श मनुष्य को इन तीन कश्मीरी शब्दों में

परिभाषित कर दिया है। यहां इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपने विचारों को उन्होंने आम कश्मीरी शब्दों में ही अभिव्यक्ति दी। गूढ़ दर्शन का पंडिताऊपन उन्होंने कहीं नहीं दिखाया। ये तीन गुण स्वयं उन्हीं के गुण थे और इस पृथ्वी पर उनके जीवन के आधार थे।

इन तीन गुणों को गहराई से देखने पर पता चलता है कि मानवीयता का आधार इन्हीं से बनता है। स्यज़र, सीधेपन या सदाचार को देखा जाये तो इसी से हमारी नैतिकता का निर्माण होता है, हमारा व्यवहार निर्धारित होता है। सारी कृत्रिमता, दिखावे और झूठ से हम दूर रहते हैं। इस तरह से हम सही सोचने, बोलने और करने के साथ-साथ लगातार भगवान से यह प्रार्थना भी करते रहते हैं कि हमें हर तरह से सही रास्ते पर बनाये रखें। भारतीय संस्कृति में पूरे विश्व को ही एक परिवार माना गया है। प्रार्थना भी सारी सृष्टि के कल्याण के लिये की जाती है - 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' इसलिये झूठ, दिखावे और मक्कारी के लिये स्थान ही कहां है। सीधा, सादा, सदाचारी व्यक्ति हमेशा संतुष्ट रहता है और सभी उसका सम्मान करते हैं। सच पूछा जाये तो 'स्यज़र' के गुण से युक्त व्यक्ति ही सच्चा योगी होता है क्योंकि वह सबको समान दृष्टि से देखता है। अब दूसरे गुण 'पज़र' पर आते हैं। पज़र शब्द का हिन्दी अनुवाद है 'सत्य'। सत्य क्या है? 'सत' की धारणा ही सत्य है। सत् एक संस्कृत प्रत्यय है जिसका अर्थ है वास्तविकता या अस्तित्व। जो भी वास्तविकता हमारे इर्द गिर्द या हमारे अंदर है, जिस किसी भी वस्तु या ऊर्जा का अस्तित्व हमारे अंदर और बाहर है, उसके बारे में जब हम एक विचार बना लेते हैं, एक धारणा बना लेते हैं तो वह सत्य कहलाता है। सत का एक अर्थ व्यक्ति के चरित्र से भी लिया जा सकता है। हिन्दी में एक कहावत है, 'सत डिगा, जहान डिगा', यानी व्यक्ति का चरित्र गया तो सब

कुछ गया। चरित्र यानी व्यक्ति की अंतरात्मा की अभिव्यक्ति, उसकी नैतिकता जिससे वह सही गलत का भेद करता है। यह चरित्र ही न रहे तो मनुष्य मनुष्य नहीं रहता। असत्य उसपर हावी हो जाता है और वह क्षणिक आनंद के लिए कुछ भी करता है। इस संसार सागर को तो सत का सहारा लेकर ही पार किया जा सकता है। सत पर डटा रहने वाला आदमी अपने साथ साथ जगत का भी कल्याण करता है क्योंकि वह स्वयं को अपने इर्द गिर्द की हर वास्तविकता, हर अस्तित्व का हिस्सा समझता है। इसलिये वह सब को नियंत्रित करके नहीं सबके साथ जीने की कोशिश करता है। इसीलिये वेदों में कहा गया है, "असतो मा सद्गमय।" इस प्रार्थना का महत्व शारीरिक, आध्यात्मिक और मानसिक तीनों स्तरों पर है। इस हिसाब से सत के पथ पर चलने वाला हर असत् को पीछे छोड़कर परम सत्य की ओर बढ़ता है। भगवद्गीता के अनुसार सत् से तीन अर्थों का संकेत मिलता है। पहला अर्थ है परम सत्य की खोज का, जो हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। इसको ही 'आत्मसाक्षात्कार' या 'परमब्रह्म का साक्षात्कार' कहा जा सकता है। दूसरा अर्थ कल्याण या अच्छाई का लिया जाता है यानी वह सब कुछ जो सब के लिये उपयोगी, लाभकारी और उत्थान का कारण बने। तीसरा अर्थ सत्कर्म या अच्छे कर्मों से है जो व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं। सत्कर्म केवल व्यक्तिगत लाभ की इच्छा से नहीं किये जाते। उनके पीछे मानव मात्र के कल्याण का एक व्यापक उद्देश्य होता है। बौद्ध धर्म में इसे ही 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' कहा गया है। सत्य को कोई नहीं टाल सकता। देर सवेर उसका सामना करना ही पड़ता है। इसीलिये उपनिषद में कहा गया है, "सत्यमेव जयते।"

तीसरा गुण है 'शोज़र' का। इस कश्मीरी शब्द का आधार ही संस्कृत शब्द

'शुद्ध' है। कश्मीरी भाषा में 'शोद' शब्द का प्रयोग शुद्ध और पवित्र के अर्थ में ही किया जाता है। भगवद्गीता में भी 'शुद्धता' या 'शुचिता' को महत्व दिया गया है। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जो भक्त 'अनपेक्षः शुचिर्दक्षः' यानी कोई अपेक्षा न रखने वाला शुद्ध और कर्म में दक्ष है वह भी मुझे प्रिय है। यह शुचिता या शुद्धता स्नान करके शरीर को शुद्ध करने की प्रक्रिया नहीं है बल्कि मन की शुद्धता है जो अच्छे विचारों से ही संभव है। जिसमें ये तीन गुण हों वही भगवतगीता के अनुसार 'ब्राह्मी स्थिति' को प्राप्त करता है। इस स्थिति में किसी से कोई मोह नहीं रहता और व्यक्ति परम तत्व में विलीन हो जाता है।

मनुष्य का शरीर पांच अलग अलग कोशों से बना हुआ है जिनसे तीन विशिष्ट शरीरों की रचना होती है। अन्न से बनता है 'अन्नमय कोश' जिससे हाड़ मांस के स्थूल शरीर की रचना होती है। इस स्थूल शरीर को स्वस्थ बनाये रखना ज़रूरी है क्योंकि सारे कर्म इसी से संभव होते है। इसे साफ सुथरा और मज़बूत बनाये रखने के लिये 'स्यज़र' और 'शोज़र' के गुण आवश्यक हैं। वायु, मन और बौद्धिक क्षमता यानी विज्ञान से क्रमशः प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश बनते हैं जो मिलकर सूक्ष्म शरीर का निर्माण करते हैं। इसे 'लिंग शरीर' यानि प्रतीकात्मक शरीर भी कहते हैं। इस शरीर के लिये तीनों गुणों की आवश्यकता है। मानसिक सदाचार के साथ बौद्धिक सदाचार यानी 'स्यज़र' की आवश्यकता होती है। इससे हमारा पूरा अस्तित्व ही तेजोमय हो जाता है। पांचवा कोश है 'आनन्द' से बना हुआ 'आनन्दमय कोश' जिससे कारण देह का निर्माण होता है। मानवीय अस्तित्व का यह बहुत ही सूक्ष्म भाग है और इसे अनुभव करना आसान नहीं होता। इसके लिये भी भगवान जी के बताए तीन गुणों की ज़रूरत होती है, नहीं तो परमात्मा से एकात्म होने के परम आनन्द की प्राप्ति असम्भव है।

ऊपर से तो स्यज़र, पज़र और शोज़र तीन छोटे से शब्द लगते हैं परन्तु, उन्हें जीवन में उतारना बच्चों का खेल नहीं है। गौर से देखा जाये तो ये तीनों गुण एक दूसरे से इस सीमा तक जुड़े हुये हैं कि वे एक ही हैं, अभिन्न है। बिना सत्यशीलता के सदाचारी नहीं हुआ जा सकता और शुद्धता के बिना तो ये दोनों ही सम्भव नहीं है। इन तीन आसान से शब्दों में भगवान जी का पूरा संदेश, उनके दिव्यत्व का प्रकाश है, जो पूरी दुनिया को रास्ता दिखा सकता है।

भगवद् गीता में कहा है;

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः

अर्थात मनुष्य को स्वयं अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये ऊपर उठना चाहिये - पतन की ओर नहीं जाना चाहिये। वह स्वयं अपना शत्रु भी है और मित्र भी (अध्याय 6 श्लोक 5)।

अमर छा मरान : अमर मरता है क्या? सीधी सी बात और सीधा सादा अर्थ कि अमर मर नहीं सकता। पर अमर है कौन? यह समझने के लिये ज्ञान और विवेक के साथ साथ सोंच समझ की भी जरूरत है। भगवद्गीता में आत्मा को अमर कहा गया है। यह न जन्म लेती है न मरती है। इसको न शस्त्र भेद सकता है न आग जला सकती है और न ही पानी भिगो सकता है, हवा भी इसे नहीं सुखा सकती। भगवान जी ने अपने एक भक्त से जब कहा कि 'अमर छा मरान' तो वे आत्मा की अमरता की ही बात कर रहे थे।

कश्मीर की आदि कवयित्री महान संत ललद्यद ने कहा है कि 'हम ही थे और हम ही होंगे, हम ही चले आ रहे हैं न जाने कब से।' जीव जो स्थूल, सूक्ष्म और

कारण देहों से बनता है अपने भीतर आत्मा को लिये रहता है। जब अपनी अंतरात्मा के सत्य अपने 'स्व' की पहचान हमें हो जाती है तो शरीर महत्वहीन हो जाता है। तो फिर अमर कौन है? सम्पूर्ण जीव या उसका एक अंश? जीव का, जो हमारा अस्तित्व है, जगत का जो संसार है और ईश्वर का आपस में एक संबंध है। यदि जीव और जगत का रचयिता ईश्वर है तो इनके गुणों में अंतर हो सकता है परन्तु यदि जीव और जगत ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है, उसी का प्रकटीकरण है तो उनके गुण भी समान ही होंगे। इस बात को तर्क के आधार पर समझना असंभव लगता है। स्वामी कृष्णानंद ने कहा था कि तर्क द्वैतवादी पूर्वाग्रह की अभिमानी संतान है। अगर यह पूरा संसार ही ईश्वर है तो ईश्वर और संसार का संबंध कोई नहीं समझ सकता। भगवान जी जैसा सिद्ध पुरूष ही सत्य का अनुभव करके कह सकता है कि ईश्वर अमर है, उसका हर रूप, हर अभिव्यक्ति अमर है और मृत्यु जैसी कोई चीज़ नहीं है क्योंकि कोई भी चीज़ मरती नहीं है। विज्ञान भी मानता है कि भौतिक तत्व नष्ट नहीं होता और न ही उत्पन्न होता है। वह केवल रूप बदलता है। 'अमर छा मरान' कहकर भगवान जी ने यह संदेश दिया है कि हम सभी अमर हैं इसलिए मृत्यु से भय क्यों? वेदों ने भी 'अमृतस्य पुत्रः' कहकर हमें अमृत के पुत्र कहा है। हमें अपने भीतर अमरता को खोजना होगा। भगवदगीता में भी कहा गया है कि ईश्वर सबके हृदय में बैठा हुआ है। स्वामी शिवानन्द बहुत ही सरल शब्दों में इस सत्य को अभिव्यक्ति देते हैं "हर एक व्यक्ति का 'आत्मा' उसके उस भीतरी अस्तित्व का साक्षी होता है जो अपने में पूरे ब्रह्माण्ड का समावेश करता है। यह सार्वभौमिक आत्मा ही परमात्मा है। हालांकि व्यक्ति शरीर की सीमाओं के भीतर रहता है, फिर भी वह सोच सकता है और अनुभव कर सकता है कि "मैं असीम हूं।" हमारे भीतर का यह असीम ही सत्यम्, शिवम् और

सुन्दरम् है। यही सत्, चित् और आनन्द है। पूछा जा सकता है कि फिर हम अपनी अमरता को समझ क्यों नहीं पाते, उसे महसूस क्यों नहीं कर सकते? इसका जवाब दो तरह से दिया जा सकता है। एक तरीका यह है कि एक मनुष्य में ब्रह्म के सभी गुण होते हैं। परमात्मा की तरह यह सृष्टि, स्थिति, संहार, पिदान और अनुग्रह जैसी सारी क्रियाएं कर सकता है। इसमें ज्ञान, इच्छा और क्रियाशक्ति तीनों है। परन्तु काल स्थान और मात्रा से इसकी ये सब शक्तियां बंधी होती है। परमात्मा किसी भी सीमा में बंधा नहीं हो सकता। इसीलिये हमारी दृष्टि सीमित होती है। हम भौतिक शरीर से परे देख ही नहीं पाते और केवल प्रत्यक्ष ज्ञान पर निर्भर रहते हैं। शरीर से ऊपर उठकर अतीन्द्रिय ज्ञान से ही हम अपने वास्तविक अस्तित्व को समझ पायेंगे और हमें भगवान जी की बातों का मतलब समझ में आ जाएगा। उनका 'सीमित आत्म' 'असीमित आत्म' से मिल चुका था और वे साफ साफ देख रहे थे कि हर प्राणी अमर है, आत्मा सार्वभौमिक और अविनाशी है और परमात्मा सर्वव्यापक और सनातन है।

अहंकारस नमस्कार, सुयगव ओंकार, तमी सूत्य बनि साक्षात्कार –

अहंकार को नमस्कार। वहीं ओंकार है, वह साक्षात्कार करवाएगा। ऐसा कहकर भगवान जी कहना चाहते थे कि हमें 'आत्म' का साक्षात्कार करके उसी में तन्मय हो जाना चाहिए क्योंकि आत्म यानी 'अहं' का बोध ही ओंकार है और 'ओम्' का ध्यान करके ही हम परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं। इस तरह से भगवान जी ओम् की व्याख्या कर रहे हैं, उस ओम् की जो रचयिता, रचना और उनके आपसी संबंधों की पूर्ण अभिव्यक्ति है। भगवदगीता में भी भगवान कृष्ण कहते हैं – 'प्रणव: सर्ववेदेषु' यानी मैं ही वेदों में 'ओम्' हूं। कहा भी गया है कि अपने आत्म को एक

लकड़ी का टुकड़ा मानो और 'ओम्' को दूसरा लकड़ी का टुकड़ा। इन दोनों को तब तक आपस में रगड़ो जब तक वे जल न उठें और परमात्मा की दिव्यता का आलोक चारों ओर न बिखरे। भगवान जी के इस वचन का वास्तविक अर्थ यही है।

यि छु किताब परान तोर छा गाश :- भगवान जी का एक प्रिय शिष्य बहुत गम्भीरता से कुछ आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन कर रहा था। उन्होंने सुना तो यह बात कही कि 'यह किताब पढ़ रहा है, उससे प्रकाश थोड़ी मिलेगा। साफ मतलब है कि सत्य का अनुभव करने से ही वास्तविक प्रकाश मिलता है, किताबी ज्ञान से नहीं। तो क्या किताबें न पढ़ी जायें? उपनिषदों में कहा गया है, "स्वाध्याप्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्" - न तो स्वाध्याय से जी चुराना चाहिए और न ही दूसरों को ज्ञान देने से। भगवान जी के कहने का अर्थ है कि अध्ययन को अनुभव करके प्रामाणिक भी बनाया जाये। विज्ञान में भी हर सिद्धान्त को अनुभव से ही प्रामाणिक बनाया जाता है और तभी वह उपयोगी सिद्ध होता है। यही भगवान जी भी मानते है। विज्ञान और क्रिया के बिना ज्ञान अपूर्ण है। भगवद्गीता में भी भगवान कृष्ण कहते हैं कि मैं तुम्हें ज्ञान के साथ विज्ञान यानी ज्ञान का प्रयोग भी समझाऊंगा ताकि कुछ जानना बाकी न रह जाये। अध्ययन से बहुत कुछ समझ में आ जाता है पर असली प्रकाश अनुभव से ही मिलता है। तब जाकर हमें वास्तविकता का बोध होता है। इसलिये यदि हमारा उद्देश्य आत्मज्ञान है तो विचार और अनुभव से हम बच नहीं सकते।

मेहनथ पनुन्य तु गोरु कृपा :- भगवान जी के कहे इन शब्दों का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है कि आध्यात्मिक उत्थान के लिये दो चीज़ों की ज़रूरत होती है - अपना परिश्रम और गुरु-कृपा। गुरु की कृपा ही हमें आध्यात्मिक पथ पर ले जाती है और परम सत्य के साक्षात्कार का मार्ग दिखवाती है। किन्तु पूरी एकाग्रता और प्रतिबद्धता के

साथ लगातार मेहनत के बिना कुछ नहीं हो सकता। गुरु का तो मार्ग दर्शन है लेकिन उसके दिखाये रास्ते पर चलना तो हमें ही है। एक संत के पास एक आदमी गया और उससे पूछा कि मन पर नियंत्रण कैसे किया जा सकता है? संत ने टका सा जवाब दे दिया, "किसके मन पर नियंत्रण करना चाहते हो? मन तुम्हारा है। जाओ और उसे नियंत्रण में करो। मुझसे क्यों पूछते हो?"

इसलिये यदि हमें साधना करनी है तो हमारी उत्सुकता, प्रतिबद्धता और निष्ठा से गुरु कृपा प्राप्त हो ही जायेगी। गुरु बतायेंगे कि कौन सा रास्ता हमारे लिये अच्छा है, हमारी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान वे मार्गदर्शन करेंगे, रुकावटों को लेकर सचेत करेंगे और उन्हें दूर करने में सहायता भी करेंगे। परन्तु यह सब प्राप्त करने के लिये हमें परिश्रम करना होगा। गुरु यह सुनिश्चित करेगा कि हमें परिश्रम का फल मिले और उद्देश्य की प्राप्ति में हम सफल हों।

यि गव ताफ परून, यि गव वीरि शिहिलिस तल पकुन : तपस्या के लिये चिलचिलाती धूप में चलना पड़ता है पेड़ की छांव तले जो चले सो चले। ये शब्द उन्होंने ब्रह्म के साकार रुप की उपासना के बारे में कहे थे। ब्रह्म के साकार या निराकार रुप की उपासना साधक की व्यक्तिगत रुचि के साथ साथ उसकी आध्यात्मिक स्थिति पर भी निर्भर करती है। भगवान जी निराकार ब्रह्म की उपासना को साकार उपासना से बेहतर मानते थे। उनके अनुसार साकार उपासना में एक वृत्त की परिधि को महत्व दिया जाता है जबकि केन्द्र महत्वपूर्ण है जिसके कारण यह वृत्त बना है। सार तत्व को देखो। ऊपर से जो दिखाई देता है उसकी पूजा करने से क्या लाभ। विचार से ही आचार संचालित होता है। अनुभूत ज्ञान का ही महत्व है। कुल मिलाकर भगवान जी सत्य को वैदिक 'मंत्र-द्रष्टा' ऋषि की तरह देखते थे। लेकिन इस सार तत्व को

अनुभव करना आसान नहीं है। छतनार दरख्तों की छांव से चलकर आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करना संभव नहीं है। इसके लिये चिलचिलाती धूप में आना ही पड़ता है, कठिन परिश्रम करना ही पड़ता है।

यि गछ़ि यच्छुन :- भगवान जी अपने कमरे में संगीत सुन रहे थे। गायक ने एक पंक्ति गाई जिसमें कहा गया था कि साधक को अपना मन और श्वास अपने गुरु के साथ मिला लेना चाहिए। यह सुनते ही भगवान जी के मुंह से निकला, "काश कि ऐसा होना बधा हो" प्रभु की इच्छा के बिना साधक गुरु के साथ एकात्म नहीं हो सकता। प्रभु का ऐसा अनुग्रह या तो पिछले जन्मों के संचित पुण्यों के कारण प्राप्त हो सकता है या इस जन्म के सत्कर्मों के कारण। पिछले जन्मों के कर्मो पर तो हमारा बस नहीं है लेकिन इस जन्म के अच्छे कर्म करना हमारे ही हाथ में हैं। इसके लिये अपने आध्यात्मिक उद्देश्य को लेकर गम्भीर होने की आवश्यकता होती है।

भगवान जी बहुत कम बोलते थे। उनके शिष्यों ने ये बातें याद रखीं और दुनिया को बताई। इन बातों का मर्म समझ में आ जाये तो आदमी का व्यक्तित्व ही बदल जायेगा और वह सत्य के रास्ते पर चल पड़ेगा।

भगवान जी मनुष्य रूप में इस पृथ्वी पर आये थे। इसलिये सांसारिकता के बारे में भी कुछ न कुछ कहते रहते थे। आधुनिक काल में मनुष्यों के बीच का भेद मिटाने के लिये जो आंदोलन चले वे तो अपनी जगह हैं। लेकिन इन्सानों में बराबरी लाने के लिये भगवान जी अपने ढंग से सोचते थे। उन्होंने कहा था कि गरीबों और जरूरतमन्दों की मदद के लिये लोगों को एकजुट होना चाहिए और संस्थायें बनानी चाहिए। इससे उन्हें ऐसी शांति, खुशी और संतोष मिलेगा जो कभी खत्म नहीं होगा। वे विश्वशांति के लिये इस दुनिया में आये थे। आजकल भूमण्डलीकरण की जो बात हो रही है उसमें

बाज़ार प्रमुख है। शांति, खुशी और विशेषकर संतोष के लिये कोई स्थान नहीं हैं। भगवान जी की इस बात से स्पष्ट है कि मानव कल्याण की संस्थायें शांति और संतोष जैसे आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये ही होनी चाहिए। ऐसा न होने पर वे भी एक दफ्तर या बाज़ार बन जाती हैं और वही भौतिक स्वार्थ उनमें भी आते हैं जो दफ्तरों या बाज़ारों में होते हैं।

वे कहते थे कि एक गृहस्थी को ईमानदारी से पैसा कमाना चाहिए और उसका कुछ हिस्सा दान में देना चाहिये। इसके पीछे भी आध्यात्मिक उद्देश्य ही है। दान के बिना धन का इतना संचय होगा कि आदमी को अभिमान हो जायेगा। इस अभिमान से उसकी आध्यात्मिकता नष्ट होगी और अशांति जन्म लेगी जो धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैलेगी।

'लोगों के धन को सोच समझकर हाथ लगाओ जैसे किसी सांप को छू रहे हो', भगवान जी कहते थे। सामाजिक कार्यकर्ताओं और धर्मार्थ संस्थानों में काम करने वाले लोगों को इसपर ध्यान देना चाहिए। भगवान जी का यह संदेश पूरी मानवता के लिये है क्योंकि आजकल रिश्वतखोरी का बाज़ार गर्म है। किसी भी देश की अंदरूनी व्यवस्था पर इससे क्या असर पड़ता है कहने की ज़रूरत नहीं है।

जो साधक उनके पास आया करते थे, उनसे भगवान जी कहा करते थे कि साधक की पहली शर्त है सकारात्मक दृष्टिकोण। इसका अर्थ है कि सबसे पहले स्वयं पर और फिर गुरु पर विश्वास होना चाहिए। मन में उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए और फिर निष्ठा और प्रतिबद्धता होनी चाहिए। मन में ज़रा सा भी संशय पैदा हुआ या साधक थोड़ा सा भी डगमगाया तो वह परमात्मा की प्राप्ति क्या करेगा। वे कहते थे कि सत्य किसी की बपौती नहीं है। वेदों में भी कहा गया है कि सत्य एक है मगर

ज्ञानीजन इसे अलग अलग ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। सत्य पर किसी का एकाधिकार नहीं है। इसको विभिन्न तरीकों से समझा और प्राप्त किया जा सकता है और इसकी असंख्य व्याख्याएं की जा सकती हैं। कोई भी एकनिष्ठ साधक लगातार परिश्रम से सत्य तक पहुंचने में सफल हो सकता है। सभी विचारकों, धर्मगुरुओं और दार्शनिकों ने एक ही सत्य की व्याख्या की है लेकिन अपने समय के हालात, लोगों की मानसिकता और जरूरतों को देखते हुए उस सत्य के विभिन्न पहलुओं पर ज़ोर दिया। भगवान जी ने साधकों से कहा था कि ध्यान इधर उधर है तो सत्य को क्या पाओगे। मन चंचल होता है। भगवद्‌गीता में अर्जुन ने 'चंचलं हि मनः कृष्ण' कहकर अपनी इसी समस्या के बारे में भगवान कृष्ण को बताया हैं। ध्यान को केन्द्रित करने के लिए, मन को स्थिर करने के लिए अथक प्रयास करना पड़ता है। इसके बिना साधक का काम ही नहीं चल सकता।

कितनी भी कठिनाइयां क्यों न आयें साधक को परमात्मा से प्रेम करते रहना चाहिए, भगवान जी इस बात पर ज़ोर देते थे। अपने रोज़मर्रा के जीवन को अगर हम देखें तो पता चलेगा कि जब हम कोई काम हाथ में लेते हैं तो कई रुकावटें आती हैं और कभी कभी तो कठिन परीक्षाएं देनी पड़ती है। परन्तु साधक को किसी भी सूरत में पथ से डिगना नहीं चाहिए। अकसर ये रुकावटें उसकी सच्चाई और निष्ठा की परीक्षा के लिये होती है। ऐसे में प्रभु से प्यार करना न केवल उसे शक्ति देगा और उसके परिश्रम का उचित फल देगा, बल्कि रुकावटों को दूर करने में भी मदद मिलेगी।

अपने शोज़र, स्यज़र और पज़र के सिद्धान्त के अनुसार भगवान जी ने कहा था कि सच्चे साधक को अपने पांव ज़मीन पर ही रखने चाहिए। बेवजह हवा में नहीं उड़ना चाहिए। किसी उच्च आध्यात्मिक स्थिति पर पहुंचकर साधक स्वयं को भगवान

ही समझने लगे तो क्या फायदा। ऐसा करने से वह नीचे आ गिरेगा और फिर कहीं का नहीं रहेगा। भगवान जी के रहते एक साधक के साथ ऐसा हुआ भी। भगवान जी ने उसे चेतावनी दी थी कि तुमने कुछ सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं तो दिखावा मत करो। उसने माना नहीं और उसका दुखद अंत हुआ। भगवान जी कहा करते थे कि भगवद्गीता हमारा मार्गदर्शन करने वाली शक्ति है और पंचस्तवी हमारी साधना। इन दो पुस्तकों को इतना महत्व देना यों ही नहीं था क्योंकि गीता तो वेदों और उपनिषदों का सार है और उससे हर प्रकार की साधना के लिए मार्गदर्शन प्राप्त होता है। कर्मयोगी, राजयोगी, भक्तियोगी या ज्ञानयोगी हर प्रकार के साधक के लिये उसमें कुछ न कुछ है। 'पंचस्तवी' साधना का ऐसा महान ग्रन्थ है जिसमें मां भगवती का अनुग्रह प्राप्त करने के लिये उनकी उपासना की गई है। इसके पांच अध्याय इतने प्रभावशाली हैं कि यदि कोई साधक किसी एक श्लोक पर ध्यान केन्द्रित करे तो वह बिना अधिक परिश्रम के 'सहज समाधि' प्राप्त कर सकता है।

उनकी विश्वदृष्टि को समझने के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि वे चाहते थे कि सभी साधकों को एक दूसरे के सम्पर्क में रहकर विचारों का आदान प्रदान करते रहना चाहिए। इससे वे सदा संतुष्ट रहेंगे। इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि साधना के दौरान उन्हें जो अनुभव हों वे एक दूसरे को बतायें। इससे उनका आध्यात्मिक विकास होगा और साधना में आने वाली रुकावटें भी दूर होंगी। जो पीछे रह गये हैं वे आगे बढ़ जायेंगे। यदि संसार भर के साधक ऐसा करें तो हर तरफ शांति और संतुष्टि का माहौल रहेगा क्योंकि आखिरकार सभी एक ही परम सत्य के साक्षात्कार का प्रयत्न कर रहे हैं। 'भगवान चेतना' जिसे हम 'गोपीनाथ चेतना' भी कह सकते हैं, का यह एक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि दुनिया भर के साधकों ने विचारों

और अनुभवों के आदान प्रदान की ऐसी कोई व्यवस्था अब तक नहीं की है।

तो इससे यह अनुमान लगाया जाये कि सभी अपने अपने खोल में बंद हैं? यदि ऐसा है तो संसार भर के साधकों को आध्यात्मिकता का यह सोपान अभी तय करना है, जो गोपीनाथ चेतना से ही संभव है। सभी साधक, चाहे वे किसी भी साधना पद्धति से जुड़े हुये हों, आपस में जुड़ जायें तो वे मानवता के कल्याण के लिए ही काम करेंगे।

भगवद्गीता में कहा गया है कि भक्त वही होते हैं जो सदा ही एक दूसरे से भगवान की बातें करते हैं, उसकी ही प्रशस्ति के गीत गाते हैं और हर कार्य उसी के लिये करते हैं। संसार भर के साधक जब एक मंच पर आकर यही करेंगे तो एक नई राजनीति और एक नई आर्थिक नीति के साथ एक नया विश्व हमारे सामने आयेगा। 'गोपीनाथ चेतना' का उद्देश्य यही है।

इसके अतिरिक्त भगवान जी ने दो बातें और कहीं थी जिनका महत्व सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में है :

1. धारा के साथ मत बहो। जरूरत पड़ने पर चट्टान की तरह धर्म के पक्ष में खड़े हो जाओ। भगवान गोपीनाथ नहीं चाहते थे कि हम सिद्धान्तों को लेकर कोई समझौता करें। सदाचार का पक्ष लेना हमारा धर्म है। कहा भी गया है - 'धर्मो रक्षति रक्षितः'। धर्म, सदाचार हमारी रक्षा तभी करता है जब हम उसकी रक्षा करें।

2. **अनुशासनहीन लोग सुधरते बाद में हैं अभिशापों को पहले झेलते है।** अनुशासन जीवन के किसी भी क्षेत्र में हो सुखदायी होता है जबकि अनुशासनहीनता सब कुछ बिखेर देती है। इसलिये अनुशासन का बड़ा महत्व है। इससे ही शांति और समृद्धि आयेगी और पूरा विश्व हर स्तर पर विकसित होगा।



गहन मुद्रा में

9

जगत कल्याण के लिये

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्

(जो निरन्तर मेरी उपासना करते हैं उनके अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा मैं ही करता हूँ।)

भगवान गोपीनाथ ने दूर दूर तक यात्रायें कर करके प्रवचन नहीं दिये और न ही भजन कीर्तन की महफिलें लगाई। उन्हें किसी विशिष्ट विचारधारा को फैलाना नहीं था। स्यज़र, पज़र और शोज़र के अपने सिद्धान्तों का निर्वाह करते हुये वे अपने घर में ही जमे रहकर लोगों के दुख दूर करते रहे। कश्मीर के संतों की यही परम्परा रही है। वे एक ओर तो लोगों के दु:ख दर्द दूर करते थे और दूसरी ओर कुछ ऐसे भक्तों का चयन करते थे जो दीक्षा का पात्र थे। उनका वे आध्यात्मिक साधना में मार्ग दर्शन करते थे। जहां ललद्यद ने कहा है "मूढस ज्ञान्च कथ नो वनज़े - मूर्ख को ज्ञान की बातें मत बताओ" वहीं शास्त्रों में कहा है "हुत: भस्माणि हविं च मूर्खे दानं अशाश्वतम् - मूर्ख को विद्यादान देना ऐसे ही व्यर्थ है जैसे भस्मीभूत अग्नि में आहुति डालना।" भगवान जी ने इसी परम्परा से सीखा, उसे आत्मसात करके उस परम्परा से ऊपर उठकर स्वयं एक परम्परा की नींव डाली और जगदगुरु कहलाये। 1968 में निर्वाण प्राप्त करने के बाद भी वे सौभाग्यशाली लोगों का मार्गदर्शन कर रहे हैं और उन्हें प्रेरित कर रहे हैं।

उनके पास तरह तरह के लोग आते थे। कुछ तो भयंकर बीमारियों से ग्रस्त होते थे। भगवान जी के पास क्या था? स्यज़र, पज़र और शोज़र की ताकत। जिन रोगियों को देखकर डाक्टर तक त्राहि त्राहि कर उठते थे, भगवान जी बिना विचलित

हुये अपने चिर परिचित, शांत दमकते चेहरे और आदमी के भीतर तक झांकती बड़ी बड़ी आंखों से उन्हें नज़र भर देखते। फिर अपनी धूनी में से चुटकी भर भस्म उठा कर उन्हें दे देते थे। कुछ को वे मिश्री की डली या किसी भक्त के लाये 'प्रसाद' में से कुछ दे देते थे। कुछ लोग थोड़ा सा चरणामृत प्राप्त करके ही स्वयं को धन्य समझते थे। कुछ को वे अपने नित्य अग्निहोत्र में काम आने वाली चिमटी से छू भर देते थे। बस, इसी से काम हो जाता था। बीमारी वास्तव में दूर हो जाती थी। कई बार तो किसी ने कह भर दिया कि वह स्वयं या उसका कोई रिश्तेदार बीमार है और भगवान जी ने कहा जाओ हो गई बीमारी ठीक। अगले ही क्षण बीमारी हमेशा के लिये चली जाती थी। कोई दिल का मरीज़ आया तो भगवान जी ने अपनी दोनों कलाइयों पर नब्ज़ महसूस की और रोगी को किसी तेल की मालिश करने की सलाह दी। इसी से रोग दूर हो गया। कभी कभी वे किसी भक्त की बीमारी अपने ऊपर ही ले लेते थे और तब तक स्वयं बीमार रहते थे जब तक अपने आप स्वस्थ न हो जाते थे। यह सब वही महापुरुष कर सकता है जो वास्तव में भगवान हो, प्रकृति के हर ऊर्जा पिन्ड पर जिसका पूरा नियंत्रण हो। बीमारी भी तो एक अव्यवस्थित ऊर्जा पिंड है। उसको ठीक करने के लिये दी जाने वाली औषधियां भी ऊर्जा पिंड होती है जो अव्यवस्था दूर कर संतुलन वापस लाने में मदद करती है। भगवान जी परम सत्ता से एकात्म थे, यानी स्वयं वही थे। इसलिये जो भी हो रहा था उनके भीतर ही हो रहा था। उनके एक इशारे से सब कुछ व्यवस्थित हो सकता था और सब कुछ अव्यवस्थित भी। इसीलिये उनका हल्का सा स्पर्श भी भयानक रोगों को दूर कर देता था।

भगवान गोपीनाथ कभी कभी भक्तों के रोगों के लिये इलाज भी सुझाते थे। पेट के अल्सर के एक मरीज़ को उन्होंने चने की दाल के साथ चावल खाने को कहा

तो वह ठीक हो गया। एक रोगी को गले की तकलीफ थी। भगवान जी ने कहा कि ईंटों के टुकड़े गर्म करो और उनसे सिंकाई करो। उसके गले का दर्द ठीक हो गया। श्रीनगर के एक संगीत विद्यालय के उप प्रधानाचार्य श्री चूनीलाल की धर्मपत्नी को रक्त कैंसर था। वे भगवान जी के पास गये तो उन्होंने अपनी धूनी में से भस्म उठाकर उसकी छोटी सी पुड़िया बनाई और कहा कि इसे पानी या जो दवा वह खाती है उसके साथ दे देना। श्री चूनीलाल की मां ने इस भस्म का सेवन बहू को कराया और उस भस्म से उसके शरीर पर मालिश भी की। उसी रात और अगले दिन उसे बहुत भूख लगी। उसे दूध और खाना दिया गया। बाद में डॉक्टर ने भी अच्छी तरह से उसकी जांच की। वे देखकर हैरान रह गये कि कैंसर का कहीं नामोनिशान तक न था।

एक महिला को गुर्दे का संक्रमण हो गया था। उसके छोट छोटे बच्चे थे। सभी परेशान थे कि मां के बिना बच्चों का क्या होगा। उसका एक संबंधी भगवान गोपीनाथ के पास पहुंचा और प्रार्थना की कि उसे बचा लें। भगवान जी ने कुछ नहीं कहा। उसे तसल्ली भी नहीं दी। वह खुद ही नीचे बैठ गया। भगवान जी कहीं दूर देख रहे थे - बहुत दूर, शायद इस ब्राह्मांड के भी पार। उन्होंने चिलम मुंह से लगा ली और धुंआ छोड़ते रहे। उस महिला का सम्बन्धी आशा भरी चिंतित नज़रों से उनकी ओर देख रहा था। काफी देर तक वे चिलम फूंकते रहे। कमरे में चुप्पी थी और धुआं था और एक परेशान आदमी बैठा था, मानव रूपी परमब्रह्म के सामने जिसके लिये मौत को टालना बच्चों का खेल था। आखिरकार चिलम मुंह से नीचे आई और चुप्पी टूटी, "जाओ! अब कोई खतरा नहीं है!" धुंआ छंट गया, मौत का साया ज़िन्दगी की रोशनी में बदल गया। वह आदमी खुशी खुशी घर चला गया। कुछ ही समय बाद वह महिला पूरी तरह से ठीक हो गई और सामान्य जीवन बिताने लगी। उनके एक भक्त

को दिल और पेट के रोग थे। कोई इलाज काम नहीं कर रहा था। वह नियम से भगवान जी के पास जाता रहता था। एक दिन हमेशा की तरह वह भगवान जी के सामने बैठा हुआ था। भगवान जी यों तो कभी कभी ही बोलते थे पर वे ऐसे कुछ शब्द बोले जो असंभव से लगते थे, "तुम्हें नया हृदय और नया आमाशय दे दिये गये हैं।" वह भक्त स्वस्थ हो गया और डाक्टरी परीक्षणों से भी साबित हो गया कि उसके दोनों अंग सामान्य हैं।

एक बार एक भक्त की जांघ की हड्डी का ऊपरी हिस्सा टूट गया। सभी जानते हैं कि उसका इलाज कितना कठिन होता है। जांघ का ऑपरेशन करके धातु की सलाई से हड्डी और उसके ऊपरी हिस्से को जोड़ा जाता है। हफ्तों एक ही स्थिति में लेटे रहना पड़ता है और ठीक होने पर सलाई निकालने के लिये फिर से ऑपरेशन। वह भक्त स्ट्रेचर पर भगवान जी के पास लाया गया। उन्होंने कुछ दिनों तक उसे साथ वाले कमरे में रखा। एक दिन वे उसके कमरे में गये, हाथ पकड़ कर उसे उठाया और कुछ क़दम चलने को कहा। कुछ और दिनों के बाद वह स्वयं ही चलते हुये घर चला गया। किसी ऑपरेशन की ज़रूरत नहीं पड़ी। नवम्बर 1966 में श्री प्राण नाथ कौल के पिता जी को ऐसी नकसीर फूटी कि खून किसी भी तरह से रुक नहीं रहा था। भगवान जी ने थोड़ी सी चाय की सूखी पत्ती दी और कहा कि इसका काढ़ा बनाओ और चीनी मिलाकर उन्हें पिला दो। ऐसा ही किया गया। खून रुक गया और अगले ही दिन वे सामान्य हो गये।

उनके पास ऐसे कई ज़रूरतमन्द भी आते थे जो धन के अभाव में बेटियों की शादी नहीं कर पाते थे। भगवान जी अपना बटुआ निकालते थे और जितना पैसा उसमें होता था सब उनके हाथ पर रख देते थे। उसके बाद सारा इन्तज़ाम हो जाता। जहां

से उन्हें उम्मीद भी न होती वहीं से धन आता और बेटियों की शादी आसानी से निपट जाती। ऐसा ही उन साधुओं के साथ होता था जो तीर्थ यात्रा के लिये कश्मीर आते थे। सबसे पहले वे भगवान जी के पास जाते थे। भगवान जी सबको एक एक रुपया दे देते थे। इससे उन साधुओं को कई जगहों से यात्रा के लिये आवश्यक धन प्राप्त हो जाता था।

किसी आदमी की मौत नज़दीक हो और उसके घर में विवाह जैसा कोई कार्यक्रम हो तो कई बार वे मौत को कुछ दिनों के लिये टाल देते थे। मृत्यु आनी है मगर इससे उन लोगों को दुख क्यों हो जिनके लिये यह मृत्यु उस समय असहनीय होगी। इसलिये वे 'यम' यानी मृत्यु के देवता को कुछ समय के लिये रोक लेते थे।

उनके एक भक्त का तबादला श्रीनगर से बारामुला हो गया था। एक बार उन्होंने अचानक ही उससे कहा कि बारामुला से अपना सब कुछ समेट कर श्रीनगर चले आओ। वह तो एकदम से कुछ समझ न पाया पर उसकी हैरानी की सीमा न रही जब कुछ दिनों के बाद उसके विभाग ने ही उसका तबादला श्रीनगर कर दिया। बात यहीं खत्म नहीं हुई। कुछ दिन बाद पाकिस्तानी कबाइलियों ने बारामुल्ला पर हमला करके कत्ल-गारत का ऐसा खेल खेला कि आज भी उसे याद करके बुज़ुर्गों के दिल दहल उठते हैं। यह 1947 का समय था। वह भक्त पहले ही श्रीनगर में सुरक्षित बैठा हुआ था। यह भगवान जी की कृपा के कारण ही सम्भव हुआ था।

भगवान जी ऐसे किसी आदमी को दुखी नहीं देख पाते थे जो मन में सच्ची श्रद्धा लेकर उनके पास आता था। श्री चूनी लाल कौल का एक व्यक्तिगत अनुभव है। वे तब स्कूल में पढ़ते थे। उनकी परीक्षाएं चल रही थीं और वे भगवान जी से आशीर्वाद लेने गये थे कि अच्छे नंबरों से पास हों। तभी एक महिला अपनी बेटी को

लेकर भगवान जी के पास आई। बेटी की छाती में भयंकर फोड़ा हो रहा था और उसका चेहरा बता रहा था कि उसे असहनीय पीड़ा हो रही है। कमरे के अंदर आते ही लड़की बेहोश हो गई और उसकी मां भगवान जी के आसन पर सिर पटकने लगी। भगवान जी वैसे के वैसे थे, एक कपड़े से चिलम का वह सिरा ढका हुआ था जो उनके मुंह से लगा हुआ था और वे धुंआ फूंक रहे थे। उनकी आंखे खिड़की के बाहर आकाश पर जमी हुई थीं। तभी उनके मुंह से कुछ अपशब्द निकले। अचानक उन्होंने उस महिला से कहा कि बेटी को सामने ले आओ। चिलम पीने के लिये जिस कपड़े का प्रयोग वे करते थे उसमें से उन्होंने एक टुकड़ा फाड़ा और महिला से कहा कि सूजी हुई छाती पर रख दो। कुछ पवित्र भस्म भी उन्होंने दी और कहा कि बाद में इसे ज़ख्म पर लगाना। बाद में कौल साहब को पता चला कि घर पहुंचते ही वह फोड़ा फट गया और उसमें से इतना मवाद निकला कि लड़की के कपड़े और बिस्तर सब गंदे हो गये। बाद में केवल ज़ख्म रह गया जिसपर मां ने पवित्र भस्म लगा दिया। जख्म धीरे धीरे भरता चला गया। भगवान जी के निर्देशानुसार लड़की को पके हुये चावल खिलाए गये और खमीर उठाया हुआ कोई पेय दस बार पीने को दिया गया। वह बिल्कुल ठीक हो गई। प्रसिद्ध डाक्टर शम्भु नाथ घासी उस लड़की का इलाज कर रहे थे। उन्होंने लड़की को इस तरह से ठीक होते देखा तो वे नियम से भगवान गोपीनाथ जी के पास जाने लगे।

भगवान जी संगीत के बहुत शौकीन थे। कश्मीर के एक प्रसिद्ध संगीतकार पं. जगन्नाथ शिवपुरी उन्हें भजन और सूफियाना संगीत सुनाया करते थे। यह भक्ति संगीत रात रात भर चलता रहता था। 1958 में एक बार श्री शिवपुरी का एक वर्ष का बेटा बहुत बीमार हो गया। शिवपुरी जी भगवान जी के पास गये। भगवान जी मसनद

से टेक लगाकर बैठे हुये थे। उन्होंने खिड़की की दहलीज पर पहले एक पांव और फिर दूसरा पांव रखा और अपने आप से ही बुदबुदाय, "इस बच्चे को कहीं और बहुत ज़रूरी काम करना है। वह यहां नहीं रह सकता।" दूसरे दिन आधी रात को बच्चा चल बसा। तीन वर्ष के बाद शिवपुरी जी स्वयं ड्यूडिनम के अल्सर से ग्रस्त हो गये। उनकी धर्मपत्नी नियम से भगवान जी के पास जाकर अपने पति के लिये पवित्र भस्म और प्रसाद लाती थीं। एक दिन भगवान जी के सामने वे रो पड़ीं। तब भगवान जी ने कुछ शब्द कहे। शब्द क्या एक अजीब पहेली थी, "परमात्मा ने उसकी मां से मूंग के कुछ दाने वसीयत में दिलवाए थे। वे दाने अब खत्म हो चुके है। अब कोई खतरा नहीं है।" वे शिवपुरी जी की माता के विषय में बता रहे थे जो डयुडिनम अल्सर की वजह से ही चल बसी थीं। शिवपुरी जी तब एक वर्ष के थे। अब उनका ऑपरेशन हुआ और वे पूरी तरह से स्वस्थ हो गये।

भगवान जी ने जो बात कही उसका गहरा अर्थ है। क्या हमारे शरीर की संरचना भी हमारी अगली पीढ़ियों को विरासत में मिलती है? विज्ञान के अनुसार यह सही है। हमारे पूर्वजों की शारीरिक संरचना का कुछ अंश हम तक अवश्य पहुंचता है।

भगवान जी आध्यात्मिक उत्थान के लिये आसन जमाने को महत्वपूर्ण मानते थे। पर आसन जमाना सरल नहीं है। आदमी के शरीर की संरचना ही ऐसी है कि वह पहलू बदलता रहता है। एक स्थिति में बैठ नहीं सकता। पर योगी आसन जमा लेते हैं और एक ही मुद्रा में लम्बे समय तक बैठ सकते है। यह अभ्यास से होता है और अभ्यास से ही आध्यात्मिक शक्ति का भी विकास होता है। यदि एक बीमारी विरासत में मिलती है तो उस प्रभाव को खत्म करते करते पीढ़ियां बीत जाती है।

पर आध्यात्मिक बीमारियों का क्या किया जाये? आजकल जिस आध्यात्मिक

शून्य की स्थिति है उसमें जो पीढ़ियां तैयार हो रही हैं, मनुष्य की जैसी आदतें बन रही हैं, आगे चलकर उससे बीमार पीढ़ियां ही बनेंगी जिनकी आध्यात्मिक ही नहीं शारीरिक संरचना भी ऐसी होगी जिससे एक बीमार विश्व का निर्माण होगा। इसलिए शिवपुरी जी को लेकर कही गई बात में भी भगवान जी विश्व के बारे में एक सत्य की ही अभिव्यक्ति करते हैं। 'गोपीनाथ चेतना' का यह महत्वपूर्ण अंग है कि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को ऐसी आध्यात्मिक विरासत दें कि विश्व में शांति ही शांति हो। यह करना हमारे हाथों में है और इसको लेकर हम में व्यक्तिगत निष्ठा और प्रतिबद्धता होनी चाहिये। नहीं तो शिवपुरी जी को जो मूंग के दाने विरासत में मिले थे वे तो खत्म हो गये, हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिये विष ही विष होगा और उनके कल्याण के लिये इस विष को गले में रोकने वाला शिव कहीं नहीं होगा। उस शिव की प्राप्ति भगवान गोपीनाथ की एक एक बात का मर्म समझकर उन्हें जीवन में उतारने से होगी।

संसार में सदाचार को, धर्म को प्रतिष्ठित करना और सभी लोगों का आध्यात्मिक उत्थान ही हर संत या महापुरूष का मुख्य उद्देश्य होता है। भगवान गोपीनाथ ने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये कई लोगों को दीक्षा दी और उन्हें ऐसे रास्ते पर डाला जिस पर चलकर वे आत्मसाक्षात्कार कर सकें। इनमें एक सिक्ख महानुभाव भी थे जो कश्मीर के बाहर से आये थे। श्री भोलानाथ हण्डू और श्री एस. एन. फोतेदार को भी उन्होंने दीक्षा दी। श्री फोतेदार ने उनकी जीवनी लिखी है जिसमें उन्होंने भगवान जी के साथ बिताये समय और अनुभवों के बारे में विस्तार से बताया है। वे लगभग बीस वर्षों तक भगवान जी के सान्निध्य में रहे। भगवान जी के सामने विचार ही महत्वपूर्ण था। वाद विवाद नहीं, बहस नहीं क्योंकि बहस करते करते आदमी

स्यज़र, शोज़र और पज़र के तीन गुणों से दूर हो जाता है। वह बहस में जीतने के लिये, अपने तर्क को स्थापित करने के लिये चालें सोचने लगता है, या ऐसी व्यवस्थाएं बनाने लगता है कि दूसरे दब जायें। तब आत्मसाक्षात्कार और सत्य के अन्वेषण के लिये कोई स्थान नहीं रहता। इसीलिये भगवान गोपीनाथ प्रवचन नहीं देते थे क्योंकि एक पल को भी यदि तर्क को स्थापित करने के लिये श्रम करना पड़ा तो आध्यात्मिकता के मार्ग में रुकावट आ जाती है। सारी ऊर्जा उसी श्रम में लग जाती है। इस श्रम को साधना में लगाया जाये तो आदमी कहां से कहां पहुंच जायेगा।

एक भाग्यशाली महोदय को मां भगवती ने स्वयं आदेश दिया कि वे भगवान गोपीनाथ जी से आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त करें। वे भगवान जी के पास गये और मार्गदर्शन प्राप्त किया। भारतीय संतों की परंपरा में ऐसी कई घटनाएं हैं जब स्वयं भगवान ने किसी साधक को एक विशिष्ट गुरु के पास जाने के लिये कहा है या गुरु को ही एक विशिष्ट साधक का मार्गदर्शन करने के लिए कहा है। प्रोफेसर जे.एन. शर्मा भगवान जी के उपदेशों का सार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, "सारी सृष्टि स्वयं परमात्मा ही है और ओम् इसका मूलाधार है। ओम् का ध्यान करने से अहंकार नष्ट होता है। परमात्मा का साक्षात्कार विवेक, परिश्रम, गुरु कृपा और शरणागति से किया जा सकता है। मनुष्य को चार वेदों और शास्त्रों के अनुसार ही चलना चाहिये। माया को निर्लिप्तता से पराजित किया जा सकता है। परमानंद की प्राप्ति के लिये कामवासना से दूर रहना चाहिये। ब्रह्म को एक वृक्ष मानना चाहिये और उसकी किसी भी डाली पर बैठ जाओ, पहुंच होगी उसी के पास।"

उन्होंने कईयों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन किया लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने उनकी कृपा से किसी न किसी रूप में परम तत्व का साक्षात्कार किया। एक

बार एक आदमी ने कहा कि मां भगवती शारिका की एक झलक दिखा दीजिये। भगवान जी के साथ वह आदमी हारी पर्वत की ओर चल दिया। वे हमेशा की तरह वहां गये और उस आदमी और अन्य लोगों के साथ वहां बैठे रहे। तभी एक छोटी सी लड़की आई। उसे कुछ खाने को दिया गया और वह चली गई। जब सब लोग वापस जाने लगे तो वे महोदय बोले, "आपने तो मां भगवती शारिका के दर्शन कराने का वादा किया था?"

"वह जो छोटी लड़की आई थी वही तो थी", भगवान जी ने कहा। यह सुनकर वे महोदय हतप्रभ हो गये।

1946 में श्री भोलानाथ हण्डू के परिवार के साथ भगवान जी पवित्र अमरनाथ की यात्रा के लिये गये। जिस दिन हिमलिंग के दर्शन होने थे, भोलानाथ जी ने अपनी बेटी से कहा कि उस ओर देखती रहे जिस ओर भगवान जी देख रहे हैं। भगवान जी का ध्यान गुफा की छत और पवित्र लिंग के ऊपरी सिरे के बीच में केन्द्रित था। वहां भगवान शिव, माता पार्वती और भगवान गणपति साफ साफ दिखाई दे रहे थे। पूरे परिवार को भगवान जी की कृपा से इस पवित्र त्रिमूर्ति के दुर्लभ दर्शन हुये।

भगवान जी के पास तरह तरह के लोग आते थे। उनके पास नियमित जाने वालों में कश्मीरी भाषा के महत्वपूर्ण कवि मास्टर ज़िन्दा कौल भी थे। मास्टर शंकर कौल पंडित जैसे शिक्षाशास्त्री, सेवा निवृत वन संरक्षक पं. श्रीधर जू धर, पं. श्याम लाल भट्ट जैसे प्रख्यात चिकित्सक, पं. शम्भूनाथ भान, पं. गोपीनाथ धर, श्री ब्रिज नाथ तिक्कू एवं पं. अमरनाथ दफतरी भी उनके यहां नियम से जाते थे। ये सभी उनके भक्त थे। शंकर कौल पंडित बहुत वृद्ध हो चले थे और शरीर में ताकत भी नहीं रह गई थी। इसलिये अपने जन्मदिन पर प्रति वर्ष भगवान जी उनके लिये प्रसाद भेजा

करते थे। एक वर्ष भगवान जी ने प्रसाद नहीं भेजा। शंकर कौल समझ गये कि उनका अंत निकट है। उसी वर्ष उनका देहांत हो गया।

प्रश्न उठता है कि क्या कोई संत किसी व्यक्ति का प्रारब्ध बदल सकता है? कहते हैं भाग्य का लिखा कोई नहीं मिटा सकता। श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं, "यो मे भक्तः सः मे प्रियः।" जो मेरा भक्त है वह मुझे प्रिय है। भक्त भगवान का प्रेम प्राप्त कर ले तो उससे कुछ भी करवा सकता है।

एक बार विष्णुलोक जाते हुये नारदजी एक नगर से गुज़रे। वहां उन्हें एक पति-पत्नी मिले जिन्हें बच्चा प्राप्त करने की तीव्र इच्छा थी। उन्होंने नारद जी से प्रार्थना की कि उन्हें बच्चा होने का वरदान दें। नारद जी ने कहा, "रुको, पहले भगवान विष्णु से पूछता हूं।"

विष्णु भगवान ने बताया कि बच्चा न होना तो इनकी नियति है। नारद जी ने दोनों को यह बात बताई पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। वे दूसरे संत के पास गये। उसने वरदान दे दिया। उनके घर एक बेटा पैदा हुआ। कई बरस गुज़र गये। नारदजी फिर से उस घर में भिक्षा मांगने के लिये पहुंचे। आंगन में पुत्र को खेलता देखकर चकित रह गये। यह जानकर कि पुत्र कैसे प्राप्त हुआ है, नारदजी क्रोधित होकर विष्णु भगवान के पास पहुंचे और बोले कि प्रभु आपने तो मुझे अपमानित कर दिया। भगवान विष्णु बोले कि भक्तों का कहा टालना मेरे लिये असंभव है। तुमने तो पूछा भर था कि उनके भाग्य में बच्चा है या नहीं। दूसरे संत ने आदेश ही दे दिया कि भगवन इनको तो पुत्र देना ही पड़ेगा। अस्वीकार करना भगवान विष्णु के लिये असंभव था सो उन्होंने पुत्र दे दिया।

भगवान गोपीनाथ प्रकृति की क्रियाओं में दखल तो नहीं देते थे पर भक्त की

छोटी छोटी इच्छाओं को पूरा करने से मना भी नहीं करते थे। एक बहुत ही सुन्दर घटना है जो एक भक्त की अंतरात्मा के सौन्दर्य और उसकी निष्ठा को व्यक्त करती है। भगवान जी के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पहलू भी इससे उजागर होता है कि वे किस स्तर पर भक्तों से जुड़े थे और भक्तों की निष्ठापूर्वक की गई क्रियाओं को परमानंद से जोड़कर देखते थे।

एक बार एक भक्त डल झील से बहुत सारे कमल के फूल तोड़कर ले आया। उसने भगवान जी से कहा कि सारे फूल आप पर चढ़ाऊंगा। भगवान जी तुरंत ही समाधि में चले गये। बिना हिले डुले घंटों परमात्मा में लीन बैठे रहे। भक्त ने सर से पांव तक उनके शरीर को कमल के फूलों से ढ़क कर सजा दिया। इससे उसे भी परमानन्द की प्राप्ति हुई। भगवान जी उसके इस असीम भक्तिपूर्ण कर्म को स्वीकार करते रहे। क्यों न करते! उन्होंने देख लिया था कि स्यज़र, पज़र और शोज़र के तीन गुण इसमें है। यह भोला है और इसी भोलेपन में मुझे फूलों से लाद देना चाहता है। वे बैठे रहे और वह उनके प्रति अपना प्रेम और अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करता रहा।

10

अनूठे आकर्षक प्रतीक

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैवचान्य:

(कोई इसे आश्चर्य की तरह देखता है और कोई आश्चर्य सा बतलाता है)

इस पूरे ब्रह्मांड में किसी भी चीज़ के तीन पहलू होते हैं – नाम, रूप और गुण। हर बच्चे की तरह भगवान जी का भी नाम रखा गया – गोपीनाथ। गोपियां, कृष्ण भगवान की गोपियां और उन सबके नाथ स्वयं कृष्ण। लेकिन इस बच्चे गोपीनाथ ने अपने नाम को सार्थक कर दिखाया। देश विदेश में उनके भी असंख्य भक्त हुए। उसका रूप, उसकी आकृति ही देखने वाले के लिये आध्यात्मिक प्रेरणा है। कहीं भी उसका चित्र लगा हो तो आप जितनी बार भी उसके सामने से गुज़रेंगे आप रुकेंगे ज़रूर और उसको नज़र भर देखेंगे।

यह बड़ी सी सफेद पगड़ी धारण किये हुये भगवान गोपीनाथ हैं। हर सुबह नित्यकर्म से निवृत्त होकर वे एक सफेद पगड़ी बांधा करते थे। पगड़ी यों तो सम्मान का प्रतीक है पर उन जैसे जीवन-मुक्त योगी के लिये सम्मान, असम्मान, सुख, दुख, लाभ हानि का तो कोई महत्व नहीं था। फिर भी आम लोग ही नहीं, उनके समकालीन संत भी उन्हें बहुत सम्मान देते थे। सफेद रंग शुद्धता, पवित्रता और सत्य का प्रतीक है। इसीलिये विद्या की देवी, माता सरस्वती श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, श्वेत कमल उनका आसन है और श्वेत हंस उनका वाहन। कुल मिलाकर श्वेत पगड़ी इसी आध्यात्मिक स्थिति को व्यक्त करती है और यह संदेश सहज ही हम तक पहुंच जाता है। सफेद रंग सच्चरित्रता का भी द्योतक है जिसपर वे बहुत ज़ोर देते थे। उनके

व्यक्तित्व के मूलभूत गुण स्यज़र, पज़र और शोज़र अनायास ही इस पगड़ी में अभिव्यक्त होते हैं।

उनका विशिष्ट रंगीन कश्मीरी लबादा 'फिरन' और इसका अलग किया जा सकने वाला 'पोछ़' भी अनूठे ही थे। फिरन बहुत खुला ढीला ढाला सा वस्त्र होता है जिसके अंदर आदमी कुछ भी लेकर चल सकता है, चाहे वह कड़ाके की सर्दी में अंगारों से भरी कांगड़ी हो या एक बड़ा सा नारियल जो उन्होंने अमरनाथ के पवित्र तीर्थ पर अपनी कांख में दबा लिया था। यह वस्त्र प्रतीक है शरण देने और रक्षा करने की उनकी क्षमता का। यह मां के आंचल जैसा है जो अपने बच्चों के लिये न जाने कितने दुख, न जाने कितनी तकलीफें अपने भीतर समेट सकता है। यह 'पिदान' और 'अनुग्रह' का भी प्रतीक है, यानी ब्रह्म को परदे में रखना और फिर परदा हटाकर उसका साक्षात्कार करवाना।

भगवान गोपीनाथ के माथे पर लगा बड़ा सा तिलक इतना आकर्षक है कि सहज ही हमारा ध्यान खींच लेता है। यह महादेव की तीसरी आंख की तरह कांतिमान है और 'चक्रेश्वर' तीर्थ की शारिका शिला से मिलता जुलता है। इस लाल तिलक के बीचों बीच चुटकी भर भस्म उनकी त्रिकाल दृष्टि को दर्शाता है जिससे वे आने वाली घटनाओं और मुसीबतों की चेतावनी पहले ही दे देते थे। वे भगवान शिव की भी पूजा करते थे और भौतिक शरीर छोड़ते समय उन्होंने 'ओम् नमः शिवाय' ही कहा था। इसलिये शिव के त्रिनेत्र जैसा ही कुछ उनके माथे पर होना आश्चर्य की बात नहीं है। ध्यान से देखें तो उनका तिलक अंडाकार था जो ब्रह्मांड का प्रतीक था। ब्रह्मांड में जो व्यवस्था होती है, जो अनुशासन होता है उसी व्यवस्था और अनुशासन का प्रतीक उनका तिलक था।

उनको याद करते ही उनकी चिलम और धूनी भी याद आ जाते हैं। दोनों में अग्नि का वास था। एक उनके सामने रहती थी और एक उनके हाथ में। वे चिलम फूंकते रहते थे। इसमें शायद विशेष प्रक्रिया से बना हुआ गांजा भी जलता था। उपवास के दौरान चिलम फूंकते हुये उन्होंने कहा था कि चिलम से उन्हें सम्पूर्ण पोषण मिलता है। क्या है इस चिलम का सत्य? चिलम से लोग नशीले पदार्थो का सेवन करते हैं ताकि वे अपने अस्तित्व को भूल सकें। यह उनके भीतर के आध्यात्मिक शून्य का परिणाम होता है। पर चिलम से भगवान जी लगातार अग्नि के संपर्क में रहते थे। वही अग्नि जिसका वास हमारे भीतर भी है, जिनके कारण हमारे भीतर अन्न जलकर ऊर्जा बनता है। वही अग्नि उस गांजे को भी जलाती थी जो औरों के लिये नशीला पदार्थ था लेकिन भगवान जी के लिये उस परमात्मा का प्रसाद जिससे वह एकात्म थे, "प्रभु जब तूने ही इसे भी बनाया है, यानी मैंने ही, यह मेरी हीतो सृष्टि है तो फिर इसके अन्दर नशा भी तो ब्रह्मानंद का ही है। यह तो मेरा पोषक तत्व है, तेरे आनंद का पोषक तत्व। इसके माध्यम से तू ही तो मेरे साथ है।" इसलिये दूसरों के लिये जो विष था, स्वयं को भूलने का साधन था, उससे भगवान जी जगत कल्याण की ऊर्जा प्रवाहित किया करते थे। उनकी धूनी में भी अग्नि लगातार जलती रहती थी। यह ज्ञान और आलोक की वह अग्नि थी, जिसमें समय समय पर आहुतियां डालकर वे जगत कल्याण के लिये देवताओं का आह्वान किया करते थे। इन आहुतियों से जो सुगंध उठती थी उससे वातावरण की शुद्धि भी होती थी।

ऐसा लगता है कि भगवान जी के आध्यात्मिक कार्यकलाप परंपरागत सांसारिक ढंग के ही होते थे। वे कई दिनों तक धूनी जलाये रखते थे और इसे उनके आदेश के बिना कोई छू तक नहीं सकता था। कई बार तो धूनी कई दिनों तक

लगातार जलती रहती थी और इसमें कुछ असाधारण चीज़ों की आहुतियां डाली जाती थीं। आहुतियां देने के लिये ये पदार्थ कुछ खास जगहों से मंगाये जाते थे। श्री प्राण नाथ कौल कहते हैं कि एक बार भगवान जी ने उन्हें आहुतियों में डालने के लिये कुछ चीजें लेने के लिये रामबाग भेजा। धूनी कई दिनों तक जलती रही थी। भगवान जी ने कहा कि इन आहुतियों से 'त्रिकोटि देवता' यानी तीन करोड़ देवता हमारे पास चले आयेंगे। अपने चिमटे से वे धूनी में लकड़ी को सही ढंग से रखते थे ताकि आग ठीक से जले। कई बार कुछ लोगों पर उन्होंने चिमटा फेंक कर मारा और कुछ लोगों से इस कदर नाराज़ हुये कि चिमटा लेकर उनके पीछे दौड़ ही पड़े। धूनी की आग को जलाये रखने के लिये उनके शिष्य भी कई बार इस चिमटे का इस्तेमाल करते थे। चिमटा एक बहुत ही सशक्त प्रतीक है। इसकी दो नोकें जीवात्मा और परमात्मा का प्रतिनिधित्व करती हैं और जिस सिरे पर ये जुड़ी हुई हैं वह अद्वैत की स्थिति है जो 'साधना' का चरम बिन्दु है। एक ऐसा उपकरण उनके पास रहता था, जो साधक के भीतर दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों के संघर्ष का प्रतीक था। साथ ही वह उस परिश्रम का भी प्रतिनिधित्व करता था जिससे आसुरी प्रवृत्तियां पराजित होती हैं और हमारे मन, वचन और कर्म में दिव्यता के दर्शन होते है। पाप को पुण्य से पराजित करने की प्रेरणा भी हमें इससे मिलती है। उनके सामने रखी धूनी के पवित्र भस्म का प्रसाद प्राप्त करने की इच्छा हर व्यक्ति को होती थी। यह एक ऐसी दिव्य औषधि थी जिससे कई बीमारियां ठीक हो जाती थीं। कुछ लोग इसे माथे पर लगाते थे और कुछ पूरे शरीर पर मल लेते थे। कुछ जीभ पर रख लेते थे और कुछ पानी के साथ निगल लेते थे। इस भस्म से यह लगता था कि यह संसार नश्वर है और हम सभी को अंततः भस्म ही होना है। यह भस्म हर जीवित और निर्जीव वस्तु के सार तत्त्व की ओर इशारा करता

था। शिव की 'विभूति' का आभास भी इससे होता था क्योंकि शिव को 'भस्माधर' कहते हैं। शिवत्व प्राप्त करना हर साधक का उद्‌देश्य होता है। कश्मीर के शैव आचार्यो ने इसे ही शाम्भवी अवस्था कहा है। यह वह स्थिति है जब साधक परब्रह्म के साथ एकात्म हो जाता है। भगवान जी ने यह स्थिति प्राप्त कर ली थी। आग की लौ उस चिरंतन प्रकाश की प्रतीक है जो 'परम शिव' का प्रतिनिधि है। भगवान जी को सुलगते हुये, धुआं उगलते रूप में अगरबत्ती या धूप पसन्द नहीं थे। उन्हें ये चीजें अग्नि की लपट के रूप में ही अच्छी लगती थीं। अग्नि को पावक कहते हैं। वह पवित्र करती है। सुगंधित वस्तुओं का सार अग्नि में पड़ने से अधिक पवित्र रूप में संसार में सुगंधफैलेगी। मृत शरीर को भी इसीलिये अग्नि को सौंपा जाता है कि पंच तत्व पवित्र और शुद्ध होकर प्रकृति में मिल जायें। अग्नि में डाली गई आहुतियां अत्यंत पवित्र रूप में देवताओं के पास पहुंचती है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार बाहर की अग्नि तो प्रतीक है, असली अग्नि तो अपने भीतर है (आत्मन्येव हिता भवन्ति)। इसलिये भगवान जी अग्नि को प्रज्जवलित करके रखना पसन्द करते थे। आहुति में डाले गये द्रव्यों को अग्नि सूक्ष्म रूप में बदलकर देवताओं तक पहुंचाता है, उस सृष्टि तक जो स्वयं देवता ही है। इसी कारण उसे हुतवह भी कहा जाता है। अग्नि ही जल से बादल बनाता है और बादल से फिर जल जिससे पृथ्वी पर नई सृष्टि होती है इसीलिये हमारे अंदर की अग्नि महत्वपूर्ण है क्योंकि वही हमारे भीतर की सृष्टि को बनाये रखती है और हम परमात्मा को प्राप्त करने के पथ पर चलते रहते हैं और संत? वह भी तो पावक है, पवित्र करता है इसलिये वह भी अग्नि ही है।

भगवान जी के कमरे में हिन्दु देवी देवताओं, गुरू नानक देव जी, राम कृष्ण परमहंस और स्वामी बालक जू काव की तस्वीरें भी लगी रहती थीं। इन तस्वीरों से

वातावरण तो पवित्र बना ही रहता था, यह संदेश भी मिलता था कि सभी रास्ते एक ही ब्रह्म तक जाते हैं। भगवान जी ने कुछ दिनों तक अपने हाथ में कोयले का एक टुकड़ा रखा जिसमें कई तहें बनी हुई थीं। धीरे-धीरे उन्होंने उसमें महाकाली का एक चित्र खेंच दिया जिसपर बाद में उन्होंने सिन्दूर का लेप लगा दिया। भगवती महाकाली चिरंतन काल की प्रतिनिधि हैं और भगवान जी का यह चित्र बनाना स्पष्ट करता है कि वे सनातन जीवन और अमरता को कितना महत्व देते थे। स्वयं तो वे इन सब चीजों से ऊपर थे पर उनके ये कर्म संसार के लिये प्रेरणा स्त्रोत हैं। उनके कमरे में एक छड़ी रखी रहती थी जिसका एक सिरा सींग जैसा था। एक त्रिशूल भी वहां रखा रहता था। छड़ी के सिरे पर वे रुद्राक्ष की माला लटकाया करते थे। कभी कभी वे यह माला पहन भी लेते थे।

इस छड़ी का भी एक अर्थ है। छड़ी अनुशासन की प्रतीक है कोई भी शासन अनुशासन के बिना सफल नहीं हो सकता। भगवान जी अनुशासन को बहुत महत्व देते थे। त्रिशूल का अर्थ तो बहुत ही व्यापक है। इससे विभिन्न सांसारिक स्थितियों की व्याख्या हो सकती है। त्रिशूल, इच्छा, ज्ञान और कर्म का समन्वय है। यदि संसार में केवल इच्छा और ज्ञान हो, तो कर्म के बिना इसमें असंतुलन आ जायेगा। केवल ज्ञान और कर्म हो तो सांसारिक इच्छाओं के अभाव में भौतिक विकास ही रुक जायेगा और यदि कर्म और इच्छा हो तो ज्ञान के बिना इन दोनों का संचालन मानव-कल्याण के लिये नहीं हो पायेगा। ये सामाजिक ही नहीं मनुष्य की व्यक्तिगत स्थितियां भी हैं। त्रिशूल त्रिकारण यानी ब्रह्मा, विष्णु और शिव का भी द्योतक है। त्रिगुण यानी सत, रज और तम का भी यह प्रतीक है। भू, भुव: और स्व: का भी यह प्रतीक है। भूत, वर्तमान और भविष्य भी इससे व्यक्त होते हैं। त्रिशूल की मूठ लम्बी होती है जो हमें उस

परमब्रह्म की याद दिलाती है जो इस ब्रह्मांड के केन्द्र में हैं। वही परब्रह्म इस ब्रह्मांड की रचना करता है, इसे नियंत्रित करता है और यह निश्चित करता है कि हर स्तर पर संतुलन बना रहे। इसीलिये त्रिशूल शिव के हाथों में है। शिव भी परमात्मा का एक ऐसा रूप है जिसमें तमाम सुख हैं, लेकिन सुख है भी या नहीं यह भी निश्चित नहीं है क्योंकि हिमालय पर जहां वे रहते हैं और तपस्या करते हैं वहां रहने को सुख नहीं कहा जा सकता। इसलिये शिव में सुख का त्याग भी है। उनमें योग और भोग दोनों हैं। जो विष कोई लेना ही नहीं चाहता, शिव ले लेते हैं और जगकल्याण के लिये उसे गले में ही रोक लेते हैं। इस दृष्टि से भगवान गोपीनाथ को देखा जाये तो वे स्वयं भी शिव ही प्रतीत होते हैं। इसलिये त्रिशूल का उनके पास होना अर्थपूर्ण है। रुद्राक्ष ध्यान और धारणा का प्रतीक है। उसकी माला छड़ी के ऊपर रखना अनुशासित साधना की प्रेरणा देता है जिससे हम परम सत्य तक पहुंच सकते हैं। भगवान गोपीनाथ अपने भक्तों को पवित्र भस्म का प्रसाद भी देते थे। यह भस्म उस धूनी से आती थी जो हर समय जलती रहती थी। इस भस्म को एक कागज़ की पुड़िया में रखा जाता था। इस पुड़िया के साथ चांदी का वर्क लगा रहता था। यह भस्म की पुड़िया ही भक्तों को दी जाती थी। पुड़िया के इस विशेष कागज़ को भगवान जी 'असमान्य स्वन' कहते थे, जिसका अर्थ होता है आकाश से उतरा सोना। पवित्र भस्म भी चांदी के रंग का होता था और कागज़ भी। इस पवित्र भस्म को पूरे सम्मान के साथ इसी कागज़ में दिया जाता था क्योंकि रजत वर्ण यानि चांदी जैसा रंग पवित्रता और शुद्धता को प्रकट करता है।

अपनी पादुका यानी खड़ाऊ का इस्तेमाल भगवान जी घर में ऊपर नीचे आने जाने के लिये किया करते थे। कई बार इसको पहन कर घर से बाहर भी जाया करते

थे। बाद में वे कैनवास के जूते पहनने लगे थे। पादुकाएं संतों की एक पारम्परिक प्रतीक हैं। पादुका पूजन तो संतों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने का एक तरीका है। पादुका इसलिये पवित्र है क्योंकि इससे हर समय उनकी उपस्थिति का भान होता है। भगवान गोपीनाथ जी की पादुकाएं पम्पोश कालोनी, नई दिल्ली के आश्रम में रखी गई हैं। पादुकाओं को देखते ही व्यक्ति श्रद्धा से उस स्थान को देखने लगता है जहां उनके दिव्य चरण रहते थे।

एक बार भगवान जी के शिष्य श्री शंकरनाथ फोतेदार अपने गुरु के आभामंडल के बारे में सोच रहे थे। हर संत का एक आभामंडल होता है। शंकरनाथ जी अपने गुरू के आभामंडल के रंग के बारे में जानना चाहते थे। वे भगवान जी के सामने बैठे हुये इस बारे में सोच ही रहे थे कि उन्होंने भगवान जी के इर्द गिर्द नीले रंग का आभामंडल देखा। यह नीला आभामंडल कुछ देर तक बना रहा और फिर धीरे धीरे धुंधला होकर लुप्त ही हो गया। भगवान जी ने अपने शिष्य की इच्छा पूरी कर ली थी, उन्हें अपना आभामण्डल दिखा दिया था। नीला रंग बुद्धि और ज्ञान का प्रतीक है जिसे भगवान जी 'विचार' कहा करते थे। ये सारे प्रतीक कुल मिलाकर यह बात स्पष्ट करते हैं कि अपनी आध्यात्मिक साधना से आदमी की एक विचारधारा, एक सोच बनती है। इस विचारधारा को अपने हर कर्म में, अपने पूरे अस्तित्व में उतारना सरल नहीं है। कठिन आध्यात्मिक साधना के बाद भी लोग कई मामलों में समझौता कर लेते हैं। इस प्रकार वे आध्यात्मिक उत्थान के उस बिन्दु पर नहीं पहुंच पाते जहां वे स्वयं रचयिता हो जाते। वे एक रचना मात्र होकर रह जाते हैं। भगवान जी के भौतिक अस्तित्व का कण-कण में, उनके इर्द गिर्द के संसार में, उनके हर कर्म में उनके भीतर का आध्यात्मिक अस्तित्व अभिव्यक्त होता था। वे रचना करते हैं अपने संसार

की, पूरी सृष्टि के साथ एकात्म हो चुके भगवान गोपीनाथ हैं वे, परब्रह्म की सृष्टि का एक अंग या उसकी छोटी सी रचना नहीं, परब्रह्म से एकाकार रचयिता हैं वे।

इन सब प्रतीकों को देखकर जो विचार अनायास ही मन में उठते हैं उनको कुछ इस प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है :-

"मेरी आंखों के सामने मेरे बब भगवान की सारी वस्तुयें एक चलचित्र की तरह आ रही हैं। उनकी चिलम और धूनि उनका चिमटा, उनका फिरन और दस्तार और उनकी पवित्र पादुका। मेरे मानस पटल पर यह सभी वस्तुयें इन्द्रधनुषी रंग बिखेरती है। और मुझे शीतलता प्रदान करती हैं। इनको देखने से मेरी सभी चिन्तायें दूर हो जाती हैं। 'मैं' और 'मेरा' की भावना से मैं ऊपर उठता हूं। मैं अनायास ही आध्यात्म की ओर खिचा चला जाता हूं। समय जैसे ठहर सा जाता है।

मेरे अन्तस्तल में मेरे बब विराजमान होकर मेरा मार्गदर्शन करते हैं। उनके सिर के पीछे मुझे एक आभा मण्डल दिखता है और उनकी पगड़ी रंग बिरंगे फूलों से सुसज्जित दिखती है। उनके मुख की छटा से मेरा पथ आलोकित हो उठता है। मैं अपने आपको उनकी शरण में सुरक्षित अनुभव करता हूं। मेरे हाथ प्रणाम में जुड़ जाते है, माथा भक्ति से झुक जाता है और आंखे मूंदकर ध्यान मग्न हो जाती है। मैं सीमाओं को लांघ, बूंद से सागर और स्फुलिंग से अग्नि, एक वृक्ष से विशाल वन एवं एकाकी तारे से पूरा तारा मण्डल बन जाता हूँ।"

अब भगवान जी का वह बहुमूल्य चित्र देखिये जिसमें यह सारे प्रतीक हैं। यहां यह दोहराना आवश्यक है कि भगवान गोपीनाथ जी ने अपने जीवनकाल में कई स्थान बदले। अंततोगत्वा उन्होंने अपने रहने के लिए जो स्थान चुना वह चोंदुपुरा हब्बाकदल में स्थित था। यहां उन्होंने 1957 से 1968 तक लगभग ग्यारह वर्ष व्यतीत किये।

भेदभाव मत रखो।
कोई भिन्न नहीं,
कोई गैर नहीं -

टाठि बब



भगवान जी के पवित्र चिन्ह
साधकों को प्रेरणा देते हुए

उनके इस निवास को सिद्ध पीठ एवं सर्वज्ञ पीठ कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सिद्ध पीठ इसलिए कि यहां पर हर किसी की मनोकामना पूरी हो जाती थी, सत्य की खोज करने वालों को सत्य की प्राप्ति होती थी और साधक को सिद्धि मिल जाती थी। सर्वज्ञ पीठ इसलिए कि यहां पर स्वयं भगवान जी विराजमान रहते थे जो त्रिकाल दृष्टि के मालिक थे, हर किसी के मन की बात जानते थे ओर हर किसी की शंका का समाधान करने में सक्षम् थे।

इस सिद्ध पीठ के सुशोभित दरबार को चित्र में ध्यान से देखिये तो कई महत्वपूर्ण चीज़ें दृष्टि गोचर होती हैं। इन सभी चीज़ों का मुल्यांकन करना बड़ा कठिन है। फिर भी अपनी मंद बुद्धि से जो कुछ हमारी समझ में आता है उसे कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि इन सभी चीज़ों को उन्होंनें अपने कर कमलों से स्पर्श किया है जिस से यह पवित्र भी हुए हैं और दिव्य भी। बब भगवान जहां विराजमान हैं ठीक उसके पीछे दाहिनी ओर एक रुद्राक्ष माला(1) लटक रही है। यह वास्तव में महारुद्र का नेत्र है। इस पर जाप करने से सत्य का साक्षात्कार होता है और आत्मानुभूति होती है। बारह राशियों में नव ग्रहों के विचरण से एक सौ आठ स्थितियां बनती हैं। इन सभी अवस्थाओं में मन को स्थिर करके जाप करने से परम् तत्व में एकाकार हो जाता है। महा गायत्री मंत्र में कटपयादि सूत्र की दृष्टि से एक सौ आठ का अंक बनता है। इस कारण भी जप के लिए माला में 108 मणियों का होना आवश्यक होता है। महा गायत्री का जाप हमारी बुद्धि को प्रखर भी करता है। और हमारी रक्षा भी करता है। कहा भी है, गायंतं त्रायते इति गायत्री, जिसके गायन से रक्षा होती हो वह गायत्री है।

भगवान जी के ही पीछे बाईं ओर एक बक्सा है और एक टोकरी है। बक्से(3) में बंद है तम्बाकू और टोकरी(2) में रक्खी हैं धार्मिक पुस्तकें। तम्बाकू नशे का प्रतीक है, वह नशा जो विषयों और वासनाओं से उत्पन्न होता है। इसे बंद रखना होगा ताकि यह हमारी पूजा अर्चना में, साधाना में अथवा आध्यात्मिक क्रिया में बाधक न बन जाये। टोकरी एक प्रकार से दर्पन है जिसमें बब भगवान का ही प्रतिबिम्ब है। उधार रखा है पुस्तकों में लिखित ज्ञान, जो थाती हैं हमारे ऋषियों और संतों की। इधर बैठे हैं स्वयं भगवान जो अनुभूत ज्ञान की साक्षात प्रति मूर्ति हैं। हमें बब के भक्त होने के नाते इस दोनों प्रकार के ज्ञान से लाभान्वित होना होगा। भगवद् गीता जैसे ग्रंथों का अध्ययन करके तथा बब जी के बताये रास्ते पर चल कर हम आगे बढ़ें तो हमारा मार्ग अपने आप प्रशस्त होगा तथा हमारी आध्यात्मिक यात्रा सरल होगी और सुगम भी। कदाचित इसी लिये बीच में एक तिलक से भरा डिब्बा(20) रखा है। तिलक माथे पर दोनों भौहों के बीचों बीच लगाया जाता है। यह स्थान हमारे शरीर में ज्ञान का केंद्र कहा जाता है। यही रुद्र की तीसरी आंख खुलती है। यही ध्यान और समाधि का केंद्र बिंदू है। तिलक ज्ञान का द्योतक भी है पोषक भी। द्योतक इस लिये कि यह ज्ञान का तेज प्रस्फुटित करता है और पोषक इस लिये कि यह हमारे मस्तिष्क में समस्त ज्ञान पुंज को संजोये रखता है और यथा समय जीवन के क्रिया कलाप में हमारा मार्ग प्रशस्त करता है।

भगवान जी के ठीक दाईं ओर चार और चीज़ें रक्खी गई हैं, एक कम्बल(17) एक तौलिया(4), एक चिपटा(5) और त्रिकोटि देवताओं के लिये आहुतियां(6)। यह सभी वस्तुयें हमारे लिये कवच का काम करती हैं। कम्बल प्रतीक है उस धर्म रूपी रक्षा कवच का जो हमें अधर्म और पाप से बचाता है। तौलिया प्रतीक है उस शोधक तत्व

का जो हमारे सभी मलों को साफ करता है, हमें निर्मल और पवित्र रखता है और हमें कमल की भांति अछूता, निष्कलंक तथा निर्मल बनाता है। चिमटा एक अद्‌भुत प्रतीक है द्वैत से अद्वैत तक की आध्यात्मिक यात्रा का। इसके एक तरफ दो सिरे हैं जो दर्शातें हैं जीवात्मा और परमात्मा के द्वैत को। यह स्थिति उस समय बदल जाती है जब हम उस परम तत्व को पाते हैं और हमें अद्वैत का सम्य्‌कज्ञान हो जाता है। यहां पर आकर जीव का परम शिव से एकाकार हो जाता है। यही व्यष्टि में समष्टि के विलय को भी दर्शाता है। आहुतियां एक ओर उस त्याग की ओर इशारा करती हैं जिसके बारे में उपनिषद कहती हैं, 'तेन त्यक्तेन भुंजीथ' - और दूसरी ओर देवताओं का आह्‌वाहन करने का माध्यम बनती हैं ताकि वे आकर हमारे मार्ग से सभी बाधाओं को दूर करें और हमारी आध्यात्मिक यात्रा में हमारे सहायक हों।

अब भगवान जी के सामने अपनी दृष्टि डालिये। आपको एक दूसरे पर रक्खे दो पत्थर(9,10) दिखाई पड़ेंगे जिनके ऊपर एक लोहे की सिगडी(11) रक्खी है जिसके अंदर धुनी(12) धधक रही है। साथ ही एक गडवी(18) है जिसमें पीने का पानी रखा है। एक ओर जल से भरा एक बरतन है जिसके ऊपर एक पानी से भरा गिलास(15) है। यह सब पांच तत्वों में से तीन प्रमुख तत्वों, पृथ्वी, जल और अग्नि के द्योतक हैं। पृथ्वी जीवन का आधार है। जल इसका पोषण करता है और अग्नि से इसमें ऊर्जा का संचार होता है। साथ ही आप देखेंगे एक चिलम(8), एक छोटा चिलम का चिमटा(14) और चिलम के लिए तम्बाकू(13)। यह भी नशीली वस्तुयें हैं परन्तु यह नशा ईश्वर के नाम का है, नाम स्मरण का है, परम तत्व से एकाकार होने का है। इसी के लिये गुरु नानक देव जी ने कहा है, - नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात - ईश्वर के नाम का नशा भक्त को दिन रात चढ़ा रहता है। वास्तम में यह परम आनंद की स्थिति

है जिसके लिये एक साधक जीवन भर लालायित रहता है।

शेष दो तत्व भी यहां परोक्ष रूप से विद्यमान हैं। कल्पना कीजिये बब महाराज चिलम का कश ले रहे हैं। यह वायु त्तव है जो एक जीवन के शरीर में प्राण के रूप में मोजूद है। कई अर्थों में प्राण और आत्मा एक दूसरे से अभिन्न हैं। स्वयं बब महाराज आकाश तत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें व्योम सा विस्तीर्ण ज्ञान है और नभ सा निश्छल प्रेम। इसी लिये उन्होंने सेवा और साधना का मार्ग हमारे लिये प्रशस्त किया है।

चित्र पर अब अपना दृष्टिपात ध्यान से कीजिये तो आप को दो और चीज़ें दिखाई पड़ेंगी, बब महाराज के पीछे रक्खा एक तकिया(16) और एक रास्ता(19) जो अंदर की ओर जा रहा है। तकिया तो वह सहारा है जो बब भगवान हमारे लिये, भक्तों के लिये और मानव मात्र के लिये अपने जीवन काल में भी थे और आज भी बने हुये हैं जब वे अशरीरी हैं। और यह रास्ता आध्यात्मिक पथ है जो योग और साधना, धर्म और कर्म तथा ध्यान और स्मरण का पथ है और जो हमें सत्य और आनंद एवं विमुक्ति और निर्वाण की ओर ले जाता है। एक और एक पात्र है जिसमें विभूति(7) है। यह उनका प्रसाद है जो वह अपने भक्तों को प्रदान करते थे। श्रधालू इसे अपने माथे पर, अपने शरीर पर या अपने किसी अंग पर लगाते थे। कुछ लोग इसे अपनी जीभ पर रखकर इसका सेवन करते थे और उनके सारे कष्ट दूर हो जाते थे।

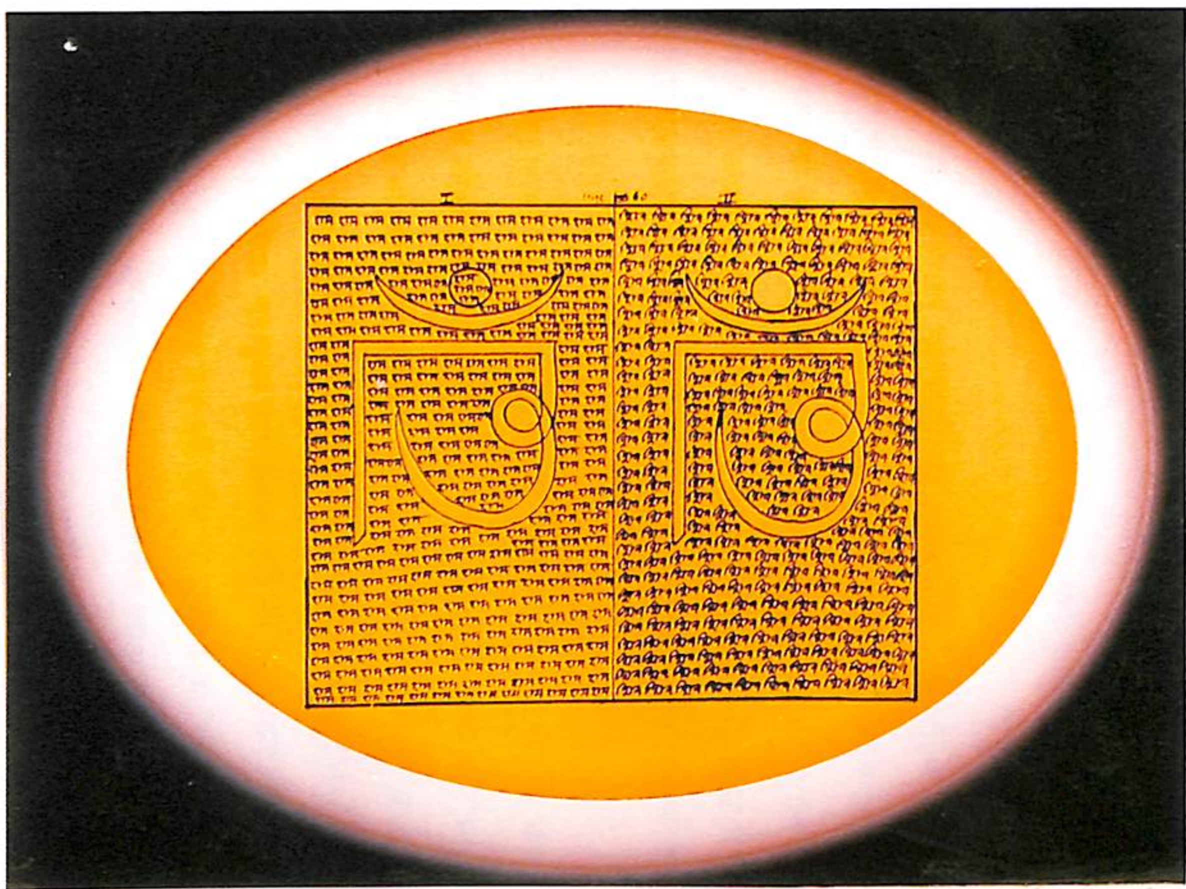
यह सिद्ध पीठ कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। यहां रहकर इसी स्थान से उन्होंने अन् गिनत चमत्कार दिखाये। राष्ट्र संघ में होने वाले निर्णयों को भारत के पक्ष में किया। सीमा पर होने वाले युद्ध को रोका। कई महत्व पूर्ण घटनाओं को दिशा दी। प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को आदेश और निर्देश दिये। देखा जाये तो इस अर्थ में यह एक शक्तिपीठ भी है। यह स्थान बब भगवान की उपस्थिति से दिव्यता को प्राप्त

हुआ है। उनके अस्तित्व से उठने वाली चुम्बकीय तरंगे इस पवित्र स्थान की अद्‌भुत छटा को और भी आकर्षक बनाती हैं। यहां पर हर समय एक अनाहद नाद गूंजता है जिसके प्रभाव से कष्ट तो दूर होते ही हैं, आध्यात्मिक साधना के पथ पर आने वाली सभी बाधायें भी नष्ट हो जाती हैं। यह एक मंदिर है जहां नत मस्तक होने से माथा उन्नत होता है और व्यक्ति पशुत्व से ऊपर उठकर दैवत्व को प्राप्त होता है।

बब भगवान को, उनके इस महा दरबार को, इस सिद्धपीठ को एवं इस सर्वज्ञपीठ को हमारा, हम भक्तों का शत शत नमन। वे सदा सर्वदा हमारे सहायक बने रहें, हमारा मार्ग दर्शन करते रहें तथा हमारा कलयाण करें। तथास्तु।

अपने गुरु से जो शिष्य
'तुम' कहके बोलता है,
वह ऐसे जंगल में
ब्रह्म-राक्षस बनता हैं
जहां पानी भी न हो-

श्री गुरु गीता



भगवान श्री गोपीनाथ जी के हाथ के लिखे दो प्रणव

11

कैसे कैसे आश्चर्य

अगाध – संशयाम्भधि समुत्तरणतारिणीम्

(संशय के महासागर को पार करवाने वाली नौका)

मानव मन तर्क के आधार पर चीज़ों को समझता है। तर्क 'हां' - और 'नहीं' पर आधारित कुछ निश्चित स्थितियों की व्यवस्था है। तर्क स्थितियों को एक ही पक्ष पर आधारित करके देखता है। मगर संत तर्क के ऊपर उठकर चीजों को उनकी समग्रता में देखता है, उनके भाव को समझता है। उसके लिये परमात्मा की सृष्टि में ऐसा कुछ नहीं है जो अवांछित है। सारी चीजें एक अनुशासन में चल रही हैं तो सब ठीक ठाक है।

संस्कृत की एक उक्ति है 'केशवः कैवर्तकः' अर्थात श्रीकृष्ण केवट है जो हमारी जीवन नौका को पार लगाता है। परन्तु ईश्वर सदा सर्वदा शरीर धारण करके हमारी सहायता के लिये नहीं आते। वे सभी कार्य किसी के माध्यम से करवाते हैं। ऐसे महापुरूष निमित बन जाते हैं। इसी कारण जब जब हम कठिनाई में होते हैं तो हम किसी साधु संत अथवा महापुरुष का सहारा लेते हैं। इस संसार के मूलभूत तत्त्व परमतत्व से एकीकृत हो चुका संत पूरी सृष्टि में ऊर्जाओं के उतार चढ़ाव को समझ लेता है और उसकी कही एक बात या हाथ का एक इशारा ही स्थितियों को ऐसे बदल देता है कि तर्क के आधार पर सोच रहे आम लोग चकित रह जाते है। इसे चमत्कार का नाम दिया जाता है। पर संत के अंदर सृष्टि में अंतर्निहित भाव की समझ इतनी व्यापक होती है कि उसके लिये यह बहुत सहज और सरल सी घटना होती है।

भगवान जी की जिन्दगी ऐसे रहस्यों से भरी हुई है। उन्होंने कई बार स्वयं ही और कई बार भक्तों के कहने पर कई चमत्कार कर दिखाये हैं। अपने भौतिक शरीर को छोड़ देने के बाद भी भगवान जी इस तरह के चमत्कार करते रहते हैं। कई बार तो ऐसी घटनाएं हुई और तुरंत समझ में आ गईं। लेकिन कुछ घटनाओं का महत्व तब समझ में आया जब लोगों पर उनका प्रभाव पड़ा।

अमरनाथ यात्रा के दौरान उनके बचपन के मित्र पं. भोलानाथ हंडू को शिव, पार्वती और गणेश के दर्शन हुये थे। इसी यात्रा पर कुछ और घटनाएं भी हुई थीं जो श्री हंडू ने लोगों को सुनाई हैं।

चन्दनवारी में उनके साथ चल रहा एक लड़का मोतीलाल बहुत बीमार हो गया। वह बुखार से तप रहा था। भोला नाथ जी ने उसकी मां से कहा कि बीमार बच्चे को लेकर श्रीनगर चली जायें। लेकिन भगवान जी नहीं माने। वे चाय पी रहे थे। उसमें से बची हुई थोड़ी सी चाय उन्होंने बच्चे को पीने के लिये दे दी। कुछ देर में बच्चा ठीक हो गया। बुखार का नामोनिशान न रहा और वह पैदल ही पूरी यात्रा करने के लिय तैयार हो गया।

लगभग आधी रात को भगवान जी जाग पड़े और उन्होंने भोलानाथ जी और अन्य लोगों को बुलाया। भगवान जी के कहने पर सब लोग उनके साथ चल पड़े। वे एक दिशा की ओर दौड़ पड़े। कुछ ही देर बाद उन्हें कुछ यात्री मिले। ये लोग रास्ता भटक गये थे और एक खतरनाक रास्ते की ओर जा रहे थे। भगवान जी ने उन्हें सही रास्ता बताया। वावजन में यात्रियों ने रात भर के लिये पड़ाव डाला। अचानक ही बादल छा गये। सभी परेशान हो गये कि बारिश होगी तो यात्रा करना असंभव हो जायेगा। भगवान जी की बहन देवमाली ने उनसे कहा कि बारिश हुई तो क्या करेंगे?

भगवान गोपीनाथ ने नज़र भर उन्हें देखा और चिलम मुंह में लगाकर धुआं खींचा। सब लोग उनकी ओर आशा भरी निगाहों से देख रहे थे। वे थोड़ा आगे बढ़े और उनके मुंह से ढेर सारा धुंआ निकला। ऐसा लग रहा था कि यह धुंआ बादलों से मिलकर उनसे कुछ कह रहा है।

भगवान गोपीनाथ खडे थे पहाड़ों के बीच। वादियां दूर दूर तक फैली थीं। लग रहा था कि साक्षात शिव ही पहाड़ों को निहार रहे हैं। उनकी नज़र ऊपर उठी। फिर एक तरफ से दूसरी तरफ धीरे धीरे घूमी। उनहोंने हाथ उठाया और उंगली बादलों की ओर उठाकर आदेश की मुद्रा में बोले, "हुपार्य आवुॅ, यपार नीरिव। (वहां से आये हो यहां से चले जाओ।)" उनकी उंगली दूसरी तरफ घूम गई। वे पीछे मुड़े। हाथ में वैसे ही चिलम थी। उनके मुड़ने के साथ ही बादल भी छंटने लगे। कुछ ही देर में मौसम साफ हो गया। जब यात्री पंचतरणी की ओर बढ़ रहे थे तो भगवान जी सबसे पीछे रह गये। मौसम गर्म हो रहा था। भोलानाथ जी ने भगवान जी से पूछा कि आप पीछे क्यों रह गये? "बारिश लाने की कोशिश कर रहा हूँ।" भगवान जी ने जवाब दिया। भोलानाथ जी घबराये, "बारिश से तो गज़ब हो जायेगा।" भगवान जी ने उन्हें तसल्ली दी। कोई गज़ब नहीं हुआ। यात्री आगे आगे चलते रहे और ठंडी ठंडी फुहारें उनके पीछे पीछे। उनकी यात्रा मज़े में कटी। गर्मी से किसी को कोई परेशानी नहीं हुई।

गुफा पर पहुंचकर भगवान जी हिमलिंग से थोड़ा नीचे ही बैठ गये। उन्होंने एक नारियल हाथ में लिया और फिरन के अंदर रख लिया। फिरन के अंदर उन्होंने बांह थोड़ी ऊपर उठाई और बांई बगल के नीचे वह नारियल रख दिया। फिर उन्होंने हिमलिंग पर ध्यान केन्द्रित कर दिया। कुछ देर बाद वे आराम से उठ खड़े हुये। ऐसे एकदम उठ खड़े होने से तो नारियल नीचे गिर सकता था। पर वह उनकी बगल के

नीचे होता तब ना। भगवान शिव ने उनका नारियल स्वीकार कर लिया था।

श्री भोला नाथ हंडू के दामाद नारायण जू एक बार बहुत मुश्किल स्थिति में फंस गये। 1947 में उनके विभाग ने उन्हें अनंतनाग से बारामुल्ला तबादले का आदेश दिया। कहां अनंतनाग और कहां बारामुल्ला। घर बार लेकर कश्मीर के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुंचना आसान नहीं था। अनंतनाग से तुरंत ही उन्हें भारमुक्त कर दिया गया। उनकी जगह जो आदमी आ रहा था उसकी पहुंच काफी ऊपर तक थी। ऐसे असर-रसूख वाले आदमी के सामने पं नारायण जू क्या कर सकते थे। वे भगवान जी के पास पहुंचे और उनसे कहा कि तबादला तो हो गया अब नई जगह पर कोई परेशानी न हो ऐसा आशीर्वाद दीजिए। परन्तु भगवान जी के मुंह से जो शब्द निकले उनकी कल्पना पं0 नारायण जू ने नहीं की थी। भगवान जी बोले, "तिमन अनन गासु रज़ करिथ।" (तुम्हारा तबादला करने वालों को घास की रस्सी से बांध कर लाया जायेगा)। नारायण जू ने सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है। तबादला तो हो गया है। मेरी जगह आने वाला आदमी रसूख वाला है। लेकिन भगवान जी ने जो कहा वह भी तो यों ही नहीं कहा। खैर! दूसरे दिन वे अनन्तनाग पहुंचे तो वहां बात ही बदल गई थी। अधिकारी ने कहा कि राज्य में आपातकाल की घोषणा कर दी गई है और सारे तबादले रोक दिये गये हैं।

1948-49 में भोलानाथ जी का परिवार भगवान जी के साथ नाव से मुगल बागों की सैर के लिया गया। पकाने के लिये मछलियां खरीदी गईं और भोलानाथ जी की बेटी प्रभावती ने मछलियां साफ करना शुरू कर दिया। भगवान जी चिलम फूंक रहे थे। एकाएक उनका ध्यान प्रभावती के पास रखी मछलियों पर गया। उनहोंने एक मछली उठाई और कुछ देर के लिये अपनी गोदी में रख ली। प्रभावती देख रही थीं

और उनके देखते ही देखते उन्होंने मछली डल झील में फेंक दी। मछली झील में गिरते ही जीवित हो उठी और तैरने लगी। प्रभावती ने भीतर ही भीतर उन्हें हाथ जोड़ दिये। मछली और चाकू उनके हाथ में थे। वे बैठी की बैठी रह गई। ऐसा क्यों किया भगवान जी ने, एक ही मछली उठाई और उसे जीवनदान दिया। साफ मतलब है कि वह केवल मछलियों के एक समूह के साथ मारी गई थी। उसकी अकाल मृत्यु हुई थी। जीवन अभी बाकी था जो भगवान जी ने उसे वापस कर दिया। प्रकृति में कहीं भी किसी भी तरह का असंतुलन वे कैसे सहन कर सकते थे! जिसका जितना जीवन है उतना उसे मिलना ही चाहिए।

1954 में अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले पं. भोलानाथ अपनी बेटी प्रभावती के साथ भगवान जी के पास गये। भोलानाथ जी ने उनकी चिलम तैयार की। भगवान जी ने इतना ज़बरदस्त दम लगाया कि चिलम में से ऊंची लपट निकली। तब भगवान जी ने भोलानाथ जी से कहा कि सामने रखे हुये पानी के एक घड़े पर नज़रें जमाये रखे। इसके बाद भगवान जी ने उसमें इतनी ज़ोर से फूंका कि लगभग आधा पानी बाहर छलक पड़ा। अचानक ही आंगन की तरफ बारिश होने लगी और दूसरी तरफ जहां नदी थी वहां एक बूंद भी नहीं गिर रही थी। वे तब तक घडे में फूंकते रहे जब तक पूरा पानी छलक कर बाहर नहीं गिरा। तब नदी की तरफ बारिश होने लगी और आंगन में धूप चमक रही थी।

जिस दिन भोलानाथ जी की मृत्यु हुई भगवान जी ऋषि मोहल्ला में अपने निवास स्थान पर नहीं थे। वे हारी पर्वत के पास पं. रामजू के घर पर थे। एकाएक वे ऊंची आवाज़ में बोलने लगे, “अमिस दियिव नारान बानिन जाय, अमिस छुनु केंह

हिसाब चुन। (इसे नारायण जू भान (भगवान जी के पिता जी) का स्थान दे दो। इसे कोई हिसाब नहीं देना है)" ऐसा लगता है कि वे भोलानाथ जी की मृत्यु देख रहे थे। एक बार पं. भोलानाथ जी के साथ ही भगवान जी तुलमुल में क्षीर भवानी (महाराज्ञा) के तीर्थ की ओर जा रहे थे। रास्ते में भगवान जी ने अचानक ही कहा कि उनकी दाईं बांह टूट गई है। बाद में पता चला कि उसी क्षण उनके भाई चल बसे थे। 1947 में कश्मीर पर कबाइलियों का हमला हुआ। भगवान जी को पहले ही इसका आभास हो गया था। उनका एक भक्त बारामुल्ला में नौकरी कर रहा था। एक दिन उन्होंने उससे कहा कि अपना घर बार समेट कर श्रीनगर आ जाये। बाद में उसका तबादला श्रीनगर हो गया। कुछ समय बाद कबाइलियों ने जिस क्रूरता से बारामुल्ला को तहस नहस किया वह अब इतिहास है। वे श्रीनगर की ओर बढ़ रहे थे। किसी भी समय श्रीनगर पर हमला हो सकता था।

इन हालात में कश्मीरी पंडितों ने श्रीनगर में मां शारिका के तीर्थ हारी पर्वत में चंडी यज्ञ का आयोजन किया जिससे शांति और सुरक्षा बनी रहे। भगवान जी भी वहां पहुंच गये। लोग उनके पास आये और कश्मीर के भविष्य के बारे में पूछने लगे। "कोई खतरा नहीं है। मैं स्वयं ही लड़ाई के मैदान में जाता हूं। कुछ नहीं कर पायेंगे वे।" फिर कुछ देर तक वे चुप रहे और बुदबुदाये, "सेना क्या कर रही है? इतना राशन मिलता है उसको और वह लद्दाख के लामाओं के कश्मीर आने के लिये रास्ता नहीं खोल रही है।" कुछ दिनों बाद भारतीय सेना ने ज़ोजीला दर्रा अपने कब्जे में ले लिया और फिर कारगिल पर भी अधिकार कर लिया। इस तरह से लद्दाख के लिये सीधा रास्ता खोल दिया गया। इस दौरान भगवान जी ऋषि मोहल्ला में रह रहे थे।

अपने आसन पर बैठे बैठे वे उंगली से इधर उधर इशारा करते रहते थे। युद्ध क्षेत्र में तैनात एक सेना अधिकारी ने बाद में बताया कि उसे एक असैनिक व्यक्ति युद्ध भूमि में दिखाई दिया था जो अग्रिम पंक्ति में सैनिकों को एक खास दिशा में गोलीबारी करने का निर्देश दे रहा था। ऐसा करना निर्णायक साबित हुआ और युद्ध उनके पक्ष में रहा। रैणावारी के श्री टी.एन. धर उस सैनिक अधिकारी से मिले तो पूछा, "वह आदमी कैसा था?" "सफेद पगड़ी, माथे पर बड़ा सा तिलक, तेजस्वी चेहरा, फिरन और हाथ में चिलम। खड़ाऊं पहने हुये थे वे। उनके चेहरे और हर क्रिया कलाप में एक ऐसा आत्मविश्वास था कि मैं यह सोच भी नहीं सका कि वह युद्धक्षेत्र में क्या कर रहा था। हम लोग तो सिर्फ उसके निर्देशों के अनुसार चलते गये" उस सैनिक अधिकारी ने बताया। धर साहब हैरान रह गये। ये तो भगवान जी ही थे। उस सैनिक अधिकारी को वे भगवान जी के यहां ले गये। वह भगवाज जी को देखते ही उछल पड़ा, "ये तो वही हैं। बिल्कुल वहीं है।" वह उनके चरणों में गिर पड़ा।

उन दिनों भगवान जी ने उपवास रखा था। एक दिन वे उठे, दाढ़ी बनाई और उपवास तोड़ दिया। उसी शाम घोषणा हुई कि भारतीय सेना ने ज़ोजीला दर्रे पर कब्ज़ा कर लिया है।

इन्हीं दिनों की एक घटना के बारे में श्री एस. एन. बख्शी बताते हैं। श्री शंकर नाथ ज़ाडू भगवान जी के पास पहुंचे और बोले कि कबाइली कश्मीर को रौंदते हुये श्रीनगर की और बढ़ रहे हैं। 'बट्टा' यानी कश्मीरी पंडित की रक्षा के लिये कुछ कीजिए। भगवान जी ने शांति से उनकी ओर देखा और बोले, "इस समय कोई बट्टा (श्रेष्ठ जन) इस संसार में है क्या?" वे कहना चाहते थे कि कश्मीरी पंडित पहले जैसे सत्यनिष्ठ नहीं रहे। लेकिन शंकर नाथ ज़ाडू नहीं माने। वे लगातार ज़ोर देते रहे कि

आपको कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। आखिरकार भगवान जी बोले, "बट्टो के लिये अपनी जान दे सकते हो तुम," "आप आज्ञा तो कीजिए क्या करना है?" पं शंकरनाथ ज़ाडू ने कहा। "यह सामने जो पंजरा (लकड़ी के जाल वाली खिड़की) है इसके छेदों में अपनी सारी उंगलियां डाल कर खडे हो जाओ।" शंकरनाथ जी ने जाली वाले पंजरे को देखा। गुरु के प्रति निष्ठा और अपने कश्मीरी पंडित समुदाय को बचाने की उनकी चिन्ता ने उन्हें सोचने का मौका ही नहीं दिया। वे उठे और पंजरे में अपनी उंगलियां फंसा ली। भगवान जी जैसे शांत रहते थे वैसे ही उनको देखते रहे।

पं शंकरनाथ पंजरे में उंगलियां फंसाये रहे। लग रहा था कि उन्हें बेहद तकलीफ हो रही है और वे पूरी ताक़त से पंजरे को पकड़े हुये हैं। लग रहा था कि वे बेहोश से हो गये है। इसी तरह लगभग एक घंटा गुज़र गया। तब भगवान जी की आवाज़ गूंजी, "बस हो गया।"

पं शंकरनाथ ने पंजरा छोड़ दिया। इसके साथ ही कश्मीर पर कबाइलियों का कब्जा भी ढ़ीला हो गया। कश्मीरी पंडित बच गये परन्तु श्री ज़ाडू अपना मानसिक संतुलन खो बैठे। कई बरसों तक वे वैसे ही रहे। अपने गुरु की प्रेरणा से उन्होंने अपने समुदाय के लिये इतना बड़ा त्याग किया।

1965 में भारत पाक युद्ध से पहले भी वे सरहदों की ओर इशारा करके कहते थे, "काल मंडरा रहा है यहां।" युद्ध चल रहा था और एक दिन अचानक ही वे अपने आसन से उठ खड़े हुये और ऊंची आवाज में अपने साथ ही बोले, "दिल्ली बचाऊं या श्रीनगर?" तुरंत ही उन्होंने मिश्री के कुछ टुकड़े अपनी जेब से निकाले। एक टुकड़ा अपने मुंह में रखा और दो टुकड़े अन्य दो लोगों को मुंह में डालने के लिये कहा।

दुश्मन ने श्रीनगर की हवाई पट्टी पर भयंकर बमबारी की पर खास नुकसान नहीं हुआ। दिल्ली पर बमबारी करने की कोशिश भी हुई पर दुश्मन के लड़ाकू विमान को दिल्ली पहुंचने से पहले ही मेरठ के पास नीचे गिरा लिया गया। भगवान जी ने दिल्ली को प्राथमिकता दी थी पर श्रीनगर शहर भी बचा लिया गया था हालांकि हवाई पट्टी को थोड़ा बहुत नुकसान पहुंचा था।

उनकी एक भक्त श्रीमती जयकिशोरी बताती हैं कि 1967 में वे हरिद्वार की तीर्थयात्रा पर गई हुई थीं। जब वे वापस लौट रही थीं तो श्रीनगर जम्मू राजमार्ग पर बानिहाल के पास जबरदस्त बर्फबारी हुई। बसों का गुज़रना असंभव हो गया। जयकिशोरी जी ने भगवान जी को याद किया और दूसरे ही क्षण ड्राइवर न जाने कैसे बस को आगे बढ़ा ले गया। कोई और बस वहां से निकल न पाई, श्रीनगर पहुंचकर जयकिशोरी जी भगवान जी से मिलने गई। वे मुस्कराए और कंधों की ओर इशारा करके बोले, "इन कंधों पर उठानी पड़ी तुम्हारी बस।"

श्री मक्खनलाल तुतू को कारोबार करने के लिये दुकान की जरूरत थी। दुकान मिल नहीं रही थी। वे भगवान जी के पास आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये पहुंचे। मक्खन लाल जी चंदपुरा में उनके निवास स्थान पर पहुंचे तो पता चला कि भगवान जी भौतिक शरीर छोड़ चुके हैं। वे निराश हो गये और भरे मन से शवयात्रा के पीछे पीछे चलने लगे। श्मशान भूमि पहुंचकर उनके दुख की सीमा न रही और वे ज़मीन पर बैठ गये। बेहद निराश होकर उन्होंने अपना सर पकड़ लिया। उसी समय वे जैसे समाधि में चले गये और उन्होंने भगवान जी को देखा। भगवान जी उन्हें श्रीनगर के रेज़िडेंसी रोड़ के पास लैम्बर्ट लेन में एक दुकान में ले गये। बाद में मक्खनलाल जी

को पता चला कि उसी जगह वैसी ही दुकान है जो किराये पर मिल रही है। वे वहां गये और दुकान उन्हें किराये पर मिल गई। भगवान जी ने भौतिक शरीर छोड़ने के बाद भी उनकी समस्या हल कर दी थी। यह भी स्पष्ट हो गया कि सांसारिक ज़िम्मेदारियां निभाने में भी वे भक्तों की मदद करते थे।

सोमनाथ काक के भाई श्री जवाहर लाल काक मुंबई में थे। उनके गुर्दे में पथरी हो गई थी। भगवान जी को उनकी बीमारी के बारे में बताया गया तो उन्होंने अपने शरीर के बाईं तरफ हाथ से रगडा और बोले, "पानी के साथ पथरी निकल गई।" मुंबई में सचमुच ही जवाहरलाल जी की पथरी पेशाब के साथ निकल गई।

कुछ देर बाद उन्हें फिर से पथरी हो गई। इस बार आपरेशन करवाना पड़ा। आपरेशन के बाद होश में आने पर उन्होंने कहा, "वह सफेद पगड़ी वाला आदमी कहां है? उसने फिरन भी पहन रखा था।" साथ वाले आदमियों ने पूछा कि वे किस सफेद पगड़ी वाले के बारे में पूछ रहे हैं। "मेरे साथ ही तो था वह। उसने कहा था कि अपनी मां से कहना कि ढाई सेर गेहूं के आटे की मीठी पूरियां मेरे घर भेज देना।" घरवाले समझ गये कि यह भगवान जी ही थे। ऐसा ही किया गया। पूरियां भगवान जी के पास पहुंचा दी गई। वे मुस्करा दिये और वहां मौजूद सभी लोगों में ये पूरियां बंटवा दीं।

1960 में श्री सोमनाथ काक हरिद्वार की यात्रा पर जा रहे थे। यात्रा पर जाने से पहले वे भगवान जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये गये। भगवान जी ने बिना मांगे ही पवित्र भस्म की एक पुड़िया उन्हें थमा दी। अपने परिवार के साथ हरिद्वार जाने से पहले वे दिल्ली में श्री एल. एन. जालपुरी के घर रुके। इससे पहले कि वे हरिद्वार जा पाते, श्री ज़ालपुरी की बेटी मेनिन्जाइटिस के कारण बहुत बीमार हो गई और

उसके बचने की उम्मीद न रही। श्री काक को भगवान जी की दी हुई पवित्र भस्म की पुड़िया याद आ गई। उन्होंने चुटकी भर भस्म बीमार लड़की को पानी के साथ खिला दिया। किन्तु उसकी हालत इतनी खराब थी कि वह पूरा पानी गले से नीचे न उतार पाई। श्री काक ने बार बार उसे पानी के साथ भस्म का सेवन कराया। कई बार ऐसा करने के बाद लड़की भस्म मिला पानी आसानी से पीने लगी। इससे जादू का सा असर हुआ। वह न केवल होश में आ गई बल्कि उसी दिन आसपास के बच्चों के साथ खेलने भी लग गई।

पं. महेश्वरनाथ कस्बा बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। 1966 की एक दोपहर वे भगवान जी के पास बैठे हुये थे। वे लगातार सोच रहे थे कि हारी पर्वत के चक्रेश्वर तीर्थ में रोज़ शाम को होने वाली आरती में शामिल होने से रह न जाये।
शाम होने लगी। पं. महेश्वरनाथ कस्बा भगवान जी की ओर देख रहे थे। अचानक ही उन्होंने देखा कि भगवान जी के पीछे वाली दीवार पर चक्रेश्वर तीर्थ का पूरा दृश्य उभर आया है। सिन्दूर से पुती हुई शारिका शिला, श्री चक्र और अनगिनत दिये। उन्होंने सुना कि परम्परागत ढंग से गाई जाने वाली आरती हू बहू कमरे में गूंज रही है। भगवान जी ने न केवल उनका मन पढ़ लिया था बल्कि उन्हें आरती में शामिल भी कर लिया था क्योंकि कस्बा जी आरती में शामिल हुये बिना नहीं रहते थे। कहीं कोई अशान्त न हो, इच्छाएं आध्यात्मिक हों या भौतिक वे पूरी हों, इसी तरह शांति आ सकती है। समूचे संसार में शांति आ सकती है। यह एक दिव्य उद्देश्य है और भगवान गोपीनाथ जैसा दिव्य पुरुष पृथ्वी पर यही संदेश लेकर आया था।

प्रोफेसर काशीनाथ धर, जो बाद में ट्रस्ट के अध्यक्ष भी रहे, भगवान जी से

कभी मिले नहीं थे। एक बार वे श्रीनगर शहर के एक इलाके छत्ताबल में अपने एक रिश्तेदार के यहां गये हुये थे। एक दिन वे दूध लेने के लिये बाज़ार गये। वापसी पर वे भूल गये कि रिश्तेदार का घर कौन सी गली में है। वे गली ढूंढते ढूंढते नदी की तरफ निकल गए। तभी फिरन और सफेद पगड़ी वाले एक कश्मीरी पंडित ने उन्हें रोका और कहा, "इस तरफ कहां जा रहे हो, यह रास्ता नही है। चलो मेरे साथ।" प्रोफेसर धर हैरान से उसके पीछे पीछे चल दिये। उसने उन्हें सही गली दिखा दी और वे रिश्तेदार के यहां पहुंच गये। कई बरस बाद जब वे ट्रस्ट के अध्यक्ष बने तो उन्हें खरयार के आश्रम में जाने का मौका मिला। वहां भगवान गोपीनाथ की मूर्ति देखकर वे लगभग चिल्ला पड़े, "ये तो वही हैं जिन्होंने उस दिन मुझे रास्ता दिखाया था।" कहा जाता है कि खरयार के आश्रम में रखी हुई भगवन जी की मूर्ति हूबहू उनकी शक्ल से मिलती जुलती नहीं है। मगर फिर भी काशीनाथ जी ने उन्हें पहचान लिया था।

1947 में पाकिस्तानी कबाइलियों ने सीमापार से सिन्धु नदी की घाटी की तरफ से कश्मीर में घुसपैठ की। वहां एक कश्मीरी पंडित नौकरी कर रहा था। पत्नी उसकी सुरक्षा को लेकर चिंतित थी। वह भगवान जी के पास पहुंची और उनसे प्रार्थना की कि उसके पति को बचा लें। उन्होंने कहा कि बचाना सम्भव नहीं है। अब उसकी पत्नी मानती कैसे! उसने उनके पांव पकड़ लिये, "अब बचायेंगे तो आप ही बचायेंगे।"

भगवान जी चुपचाप चिलम फूंकते रहे। उधर कबाइलियों ने हमला बोल दिया तो वह आदमी वहां से भाग निकला। वह वाइल नामक स्थान पर पहुंचा। वहां से एक बस में चढ़ा जो लोगों से खचाखच भरी हुई थी। उसे बस की छत पर यात्रा करनी पड़ी।

यहां भी उसे बहुत मुश्किल से जगह मिली। एक जगह बस को इतना ज़ोरदार झटका लगा कि इतने लोगों में से केवल वही छत से नीचे गिर पड़ा। उसे ऐसा लगा किन्हीं अदृश्य हाथों ने उसे थाम लिया है। वह ज़मीन पर गिरा। उसे बिल्कुल चोट नहीं आई थी। लोग उसे पास की एक दुकान पर ले गये और पानी पिलाया।

घर पहुंचकर उसने सब कुछ अपनी पत्नी को बताया। उसने भी भगवान जी की बातों का जिक्र किया। दोनों को विश्वास हो गया कि भगवान जी के अदृश्य हाथों ने ही उसे पहले तो कबाइलियों से बचाया था और फिस बस से गिरते समय उन्हीं हाथों ने उसे आराम से ज़मीन पर रख दिया था।

यह तो थी अपने पूर्वाभास के कारण एक व्यक्ति की जान बचाने की कहानी। उन्हें 1962 के चीनी आक्रमण का भी पूर्वाभास हो गया था। भद्रकाली के तीर्थ से उन्होंने अपनी बहन देवमाली और एक अन्य भक्त के सिवा सभी को घर भेज दिया। तिब्बत की दिशा में उंगली उठाकर उन्होंने कहा, "देख नहीं रहे हो, पहाड़ों के उस पार क्या हो रहा है? एक तूफान आयेगा, जो तुम्हें उड़ा कर ले जायेगा।" इसके बाद ही चीनी आक्रमण हुआ। एक रात वे घर से निकलकर कहीं चले गये। लगभग एक घण्टे बाद वे लौटे तो उनके कुछ शिष्यों ने पाया कि उनके कंधे और कमर बर्फ की तरह ठंडे थे। लग रहा था कि वे कहीं पहाड़ों से आ रहे हैं। पूछने पर उन्होंने बताया कि वे तिब्बत में मामला सुलझाकर आ रहे हैं। इसके कुछ दिनों बाद ही युद्ध विराम हो गया।

डा. कौशल्या वली कहती हैं कि एक सम्पन्न परिवार के पास सारी भौतिक सुविधाएं होते हुये भी मन की शांति नहीं थी। उस परिवार के कुछ सदस्य भगवान जी के पास गये। भगवान जी धूनी में आहुतियां डाल रहे थे और चिलम फूंक रहे थे। वे

बहुत देर तक कुछ नही बोले। फिर उनके मुंह से निकला, "आने वाले सोमवार तक सब ठीक हो जयेगा।"

सोमवार आया। कुछ नहीं हुआ। शाम होते होते घर की बिजली चली गई। सब परेशान हो गये। औरतें कहने लगी कि खाना पकाना कठिन हो जायेगा। मिट्टी के तेल के लैम्प और दिए खोजने पड़ेंगे। घर का एक सदस्य उठा और एक बिजली ठीक करने वाले को बुला लाया। उसने सभी तारों और स्विचों का मुआयना किया और एक छोटे से कमरे में ताक के पास एक छुपे हुये से कोने में एक तार में खराबी बताई। उस तार को बदलने का फैसला किया गया। बिजली वाला तार बदल रहा था तो उसी कोने से एक कागज़ का टुकड़ा गिर पड़ा। उस पर घर के सभी सदस्यों के आकार रंगों से बने हुये थे और थोड़ी सी राख भी रखी हुई थी। ज्योंहि वह कागज़ का टुकड़ा घर से बाहर फेंक दिया गया। घर के सदस्यों को जैसे नया जीवन मिला। सभी लोग शांत हो गये। चिंताएं दूर हो गई। भगवान जी ने देख लिया था कि किसी ने उनपर टोना कर दिया है और इसीलिये टोना दूर करने की व्यवस्था भी करवा दी।

भगवान जी को विदेशों में होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास भी हो जाता था। एक बार वे चिल्ला उठे कि भयंकर भूकम्प आने वाला है। वहां मौजूद लोग चिंतित हो उठे कि कहीं कश्मीर में भूकम्प न आ जाये, क्योंकि यह भी भूकम्प क्षेत्र में आता है। कुछ देर बाद समाचार आया कि ईरान में खतरनाक भूकम्प आया है और बहुत तबाही हुई है। भगवान जी पृथ्वी और इसके हर प्राणी के स्पन्दन को अपने भीतर महसूस करते थे।

श्री उपेन्द्र कारिहलू चैतन्य स्वामी के भक्त थे। कश्मीर में आतंकवाद के चलते स्वामी जी भी श्री नगर से जम्मू चले आये थे और बोहडी में रह रहे थे। उपेन्द्र

जी वहां जाना चाहते थे मगर उनके पास सही पता नहीं था। किसी ने उन्हें बताया कि पास ही एक आश्रम है। शायद वे वहां रहते हों। जब वे उस आश्रम पर पहुंचे तो वहां एक झोंपड़ीनुमा मकान था। उन्हें फिरन और सफेद पगड़ी पहने, बड़ा सा तिलक लगाये एक कश्मीरी पंडित मिला। उसने उन्हें कश्मीरी कहवा पिलाया जिसमें बादाम, दालचीनी और इलायची पड़े हुये थे। इतना स्वादिष्ट कहवा उन्होंने कभी नहीं पिया था। चैतन्य स्वामी के लिये वे जो फल लाये थे, उन्होंने उन पंडित जी के सामने रख दिए। किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किए और बोले कि जिसके लिये लाये हो, उसी को देना उचित होगा। वे उपेन्द्र जी को उस मकान में ले गये जहां चैतन्य स्वामी रहते थे। साल भर बाद उपेन्द्र जी की पत्नी उन्हें बोहडी में स्थित भगवान जी के आश्रम पर ले गई जो तब एक बड़े भवन का रूप ले चुका था। उन्होंने उस जगह को पहचान लिया। वहां रखे भगवान जी के चित्र से उन्हें पता लगा कि उस दिन रास्ता इन्होंने ही दिखाया था। एक बार श्री सी.एल. मोज़ा श्रीनगर में खरयार स्थित भगवान जी के आश्रम में उनकी मूर्ति के सामने ध्यान लगाना चाहते थे। वे संगमरमर की मूर्ति के एक तरफ रखे भगवान जी के चित्र पर ध्यान केंद्रित कर ही रहे थे कि चित्र में भगवान जी की दाईं आंख झपकने लगी। आंख धीरे से बंद हुई और खुल गई। एक अन्य भक्त श्री टी. एन. कौल ने श्री मोज़ा की इस बात को सही ठहराया क्योंकि उन्हें भी ऐसे अनुभव हो चुके थे।

एक अन्य व्यक्ति शास्त्रों में दी गई समय की भारतीय अवधारणा से असहमत था। हमारे कई वर्ष ब्रह्मा के एक वर्ष के बराबर कैसे हो सकते है? उसे समझ में नही आ रहा था। इसलिये वह मान ही नहीं रहा था। भगवान जी ने उसपर एक दृष्टि डाली तो वह समाधि में चला गया। बच्चा, जवान, बूढ़ा, बहुत ही बूढ़ा - सभी स्थितियां पार

करते हुये उसने पूरी उमर निकाल ली और अचानक ही जैसे जाग सा गया। सामने भगवान जी चुपचाप बैठे मुस्करा रहे थे। उसे लगा कि समय तो अधिक नही बीता है पर उसकी तो पूरी उमर ही गुज़र गई है। एक पल को वह समझ ही न पाया कि वह कहां है? फिर उसने भगवान जी के चरण पकड़ लिये। उसे मनुष्य और ब्रह्मा के समय का सम्बन्ध समझ में आ चुका था।

श्री नना जी पंडित का कहना है कि सन् 2001 में खरयार में दुर्गा मंदिर के पास रहने वाले एक मुस्लिम सज्जन को भगवान जी के दर्शन हुये। वे सुबह सवेरे वितस्ता नदी के घाट की सबसे निचली सीढ़ी पर अपना घड़ा धो रहे थे। फिर उन्होंने स्नान किया और आश्रम की तरफ चल पड़े। इसके बाद वे अंदर चले गये। अगले दिन वे सज्जन अपने बेटे के साथ घाट पर गये। दोनों ने भगवान जी को वैसा ही करते देखा जैसा पिता ने पिछले दिन देखा था। उन्होंने आश्रम में पता किया तो पता चला कि पिछले तीन दिनों से आश्रम का दरवाज़ा खोला नहीं गया था। मुस्लिम सज्जन चकरा गये, "या खुदा! यह मैंने क्या देखा? यह फकीर तो कब का गुज़र चुका है। फिर मैं कैसे देख रहा हूं इसे?

कुछ दिनों के बाद उन्हें भगवान गोपीनाथ सपने में दिखाई दिये। उन्होंने हुक्म दिया कि लोलाब घाटी के गांव सोगाम से उनके लिए चरस ले आयें। उन्होंने उसी दिन हुक्म की तामील की। सोगाम जाकर चरस ले आये और आश्रम में जाकर पूरी अकीदत से भगवान जी के मुबारक पैरों के पास रख दी। फकीर तो खुदादोस्त होता है। किसी के भी ख्वाब में आकर कोई भी हुक्म दे सकता है। मुस्लिम सज्जन समझ गये कि फकीर इन्सानों को बांटते नही है। इसीलिये तो इस फकीर का दर्शन उन्हें हुआ।

भारत की चारों दिशाओं में स्थित शंकराचार्य के चारों मठों के पीठाधिपति चारों शंकराचार्य मिलकर वर्ष में एक बार 'चंद्रमौलेश्वर महारुद्राभिषेक' करवाते हैं। इसमें मिट्टी से बने सवा लाख शिवलिंगों का अभिषेक एक निश्चित दिन पर किया जाता है। 2002 में यह विशाल आयोजन पूर्वी मठ के पीठाधिपति ने पश्चिम बंगाल में जयगांव नामक स्थान पर करवाया था। कार्यक्रम तीन मई से सात मई तक चलना था। इसमें पुरी के मठ के पीठाधिपति शंकराचार्य स्वामी अधोक्षजानंद तीर्थ जी महाराज भी उपस्थित थे। पांचों दिन असंख्य भक्तों ने भगवान शिव का आशीर्वाद प्राप्त किया। हज़ारों वेदज्ञों, वेद पाठियों और साधुओं ने कार्यक्रमों में भाग लिया। तीसरे दिन यानी 5 मई को महारुद्राभिषेक शुरू हुआ। वेदमंत्रों की ओजस्वी ध्वनियां वेदपाठियों के मुख से फूट रही थी। वे अपनी अपनी पद्धतियों में प्रकृति या विकृति पाठों के अनुसार मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे। मंत्रों की गूंज से पूरा वातावरण शिवमय हो रहा था। दिव्यता की पवित्र तरंगे हर मन को शुद्ध करने लगीं। तभी भगवान जी वहां प्रकट हुये, अपनी दिव्य आभा और तेज के साथ। उनके एक प्रिय भक्त श्री प्राणनाथ कौल ने उन्हें साफ साफ देखा। हर पवित्र अवसर पर भगवान जी मौजूद होते हैं। हर पवित्र मन वाले व्यक्ति की सहायता के लिये वे तैयार होते हैं। कोई भी पवित्र अवसर उनकी उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं है क्योंकि वे तो स्वयं शिव हैं कल्याण के प्रतिरूप।

इस घटना से किसी को कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कहा भी गया है "यत्र यत्र रघुनाथ कीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांजलिं वाष्पवारि परिपूर्ण लोचनं नमत मारुतीं राक्षसांतकम् – जहां जहां श्रीराम का कीर्तन होता है वहां पर नतमस्तक और श्रद्धा से आंसू भरे नयनों वाले हनुमान जी उपस्थित होते है – उन्हें हमारा प्रणाम।"

मैं व्यक्तिगत रूप से एक भक्त महिला से परिचित हूं जो दिल्ली के राणा प्रताप बाग में रहती थी। वे जब जब राम चरित मानस का पाठ करने बैठती उन्हें श्री हनुमान जी दृष्टि गोचर होते थे।

स्वामी अभेदानंद जी के साथ भी वेदान्त मठ कलकत्ता में कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। उन्होंने अपने गुरु श्री रामकृष्ण के लिये एक सोने का सिंहासन बनवाना चाहा। वे इसके लिये कुछ सोना लेकर स्वर्णकार की दुकान की ओर निकले। सीढ़ियों से उतर रहे थे कि पीछे से आवाज़ आई "अरे रुको। क्या करने जा रहे हो। तुम्हें याद नहीं कि मैं धातु तक नहीं छूता और तुम चले मुझे स्वर्ण सिंहासन पर बिठाने।" उन्होंने मुड़कर देखा और समझा कि यह आदेश उनके गुरु का ही था। उन्होंने अपना विचार बदला और सोने के बदले चंदन का आसन बनवाया जो आज तक वेदांत मठ में सुशोभित है।

प्रथम दिवस आवरण FIRST DAY COVER



भगवान गोपीनाथजी BHAGWAN GOPINATHJI





भारत सरकार का प्रथम दिवस आवरण

12

उनका प्रभाव

यद्यदाचरित श्रेष्ठः तत्तदवे तरो जनः

(श्रेष्ठ के आचरण का अनुकरण दूसरे लोग करते हैं)

श्री गीता में तीन प्रकार के लोगों के गुणों का वर्णन है, स्थित प्रज्ञ, ईश्वर के प्रिय तथा दैवी सम्पदा के मालिक। यह गुण प्रायः एक जैसे हैं इनमें प्रदान है अभय, संशुद्धि समत्व, निष्काम भाव, अहंकार और घृणा रहित प्रकृति। जिस किसी व्यक्ति में यह गुण विद्यमान हों वह ईश्वर का प्रिय होता है और उसमें मानव मात्र और घटनाओं को प्रभावित करने की क्षमता होती है। यही कारण है कि भगवान गोपीनाथ ने कई लोगों की जिन्दगियां बदल दीं। कई घटनाओं की दिशा बदलने में भी उनका योगदान रहा। 1968 में अपने महानिर्वाण के बाद भी इतिहास की धारा को मोड़ने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने जीवनकाल में भी वे किसी और जगह पर उपस्थित हो सकते थे जबकि उनका शरीर श्रीनगर में होता था। एक बार अमरनाथ जी की यात्रा के दौरान उनके साथ चल रहे यात्रियों को दो दलों में बांटा गया। एक दल आगे चला गया और दूसरा दल पीछे पीछे चल रहा था। दोनों दलों के यात्री भगवान जी को अपने साथ चलता देरव रहे थे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अक्रूर जी ने श्रीकृष्ण को यमुना नदी के जल में और रथ पर आसीन एक साथ देरवा था।

आस्ट्रेलिया के फिलिप सिम्फेनडार्फर 1975 में कश्मीर आये थे। अब उनका देहांत हो चुका है, पर अपने जीवनकाल में वे अकसर वह शनिवार याद किया करते थे जब उनकी बेटी हेलेन का विवाह पीटर से होने वाला था। आकाश काले काले

बादलों से घिर गया था और साफ लग रहा था कि ज़ोरदार बारिश होगी। फिलिप क्या कर सकते थे, वे अपने कमरे मे गये, भगवान जी का रूप अपने मन में स्थिर किया और प्रार्थना करने लगे, "हे भगवान जी! खुली जगह पर बच्चों का विवाह करने की सोची थी। पर लगता है कुदरत को मंजूर नहीं है। अब तुम ही बच्चों की खुशी का ध्यान रखना।" देखते ही देखते बादल छंट गये और विवाह संपन्न होने तक धूप खिली रही।

श्री फिलिप को 1978 में भगवान जी के फिर दर्शन हुये। वे ध्यानमग्न थे और इसी अवस्था में उन्हें भगवान जी दिखाई दिए। भगवान जी ने उनसे कहा कि ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो विनाश की ताक़तों के खिलाफ चट्टान की तरह खड़े हो सकें। ऐसे लोग ही दुनिया को रास्ता दिखा सकते हैं। संसार भर के आश्रम शक्ति के केन्द्रों से जुड़े होने चाहिए ताकि मानव प्रेम और कल्याण का आलोक धर्म और जाति के बंधनों को तोड़कर हर मनुष्य तक पहुंच सके। यह घटना भगवान जी के महानिर्वाण के लगभग दस वर्ष बाद हुई। इसके आठ वर्ष बाद 1986 में उन्होंने एक अन्य आस्ट्रेलियाई भक्त रेमण्ड गॉर्डन को दर्शन दिए। वे और अन्य ऑस्ट्रेलियाई यॉनी हौली दोनों ही भगवान जी के अनन्य भक्त हैं और उनके ही आलोक पर ध्यान केन्द्रित करके साधना करते हैं। भगवान जी के भक्त आस्ट्रेलिया, अमेरिका, कैनेडा, स्विटजरलैंड में है हालांकि उन्होंने स्वयं कभी भी कश्मीर से बाहर कदम नहीं रखा था। पूरे संसार में लोगों का मार्गदर्शन करने वाले वे इसीलिये जगद्गुरु हैं।

भगवान जी के बारे में लिखे गये एक लेख में श्री फिलिप अपने अनुभवों को यों बयान करते हैं, "रात के अंधेरे में, नींद की गहराइयों से परे किसी स्थान पर किसी क्षण में उनकी उपस्थिति को महसूस करता हूं। वे मनुष्य रूप में नहीं है, पर वे निश्चय

ही मौजूद हैं, किसी भ्रम और संदेह की गुंजाइश ही नहीं है। शायद उनका शरीर एक ऊर्जा पुंज है, या फिर एक स्पंदन मात्र। मेरे भीतर की गहराइयों में, मेरे सूक्ष्म अस्तित्व के किसी हिस्से को एक अलौकिक प्रकाश का स्पर्श प्राप्त होता है। मुझे लगता है कि यह प्रकाश पूरी पृथ्वी को स्पर्श कर रहा है क्योंकि यह उस जगह की चट्टानों, गुफाओं, घाटियों और नदियों में फैलता है जहां मैं रहता हूं। कुछ वर्ष पहले जब मैंने उन्हें उनके सूक्ष्म रूप में अनुभव किया तो मैंने पूछा कि वे वास्तव में कहां हैं? उन्होंने जो उत्तर दिया उसका सार यही निकला था कि, "हम शक्तियों के एक चक्र में है।" यह उत्तर अभी भी मेरे लिये एक पहेली है। क्या इसका यह अर्थ लिया जाये कि वे एक वृत्त, एक चक्र के केन्द्र बिन्दु की तरह हैं और उनका उद्भूत होना केन्द्र को किनारे से जोड़ती चक्र की तीलियों की तरह; वह किनारा जो एक शक्तिशाली वरदान है क्योंकि यह विभिन्न ऊर्जा पथों से पूरे विश्व के इर्द गिर्द घूम रहा है। शक्ति की तरंगों को कोई नहीं रोक सकता। इनके कल्याणकारी अंश को सारी सृष्टि सुपात्र मनुष्यों की तरह ही स्वीकार करती है। दूसरों के बीच से यह ऊर्जा बस गुज़र भर जाती है। यह असीम और अनन्त चेतना की ऊर्जा है।"

अपने लेख के अंत में श्री फिलिप कहते हैं कि यदि मनुष्य भगवान चेतना (गोपीनाथ चेतना) के अनुसार जियें तो असीम और अनन्त को प्राप्त करने का रास्ता आसान हो जायेगा। श्री फिलिप के अनुसार भगवान जी लगातार अपनी चेतना हम में फूंक रहे हैं। यदि हम स्थितियों को उनकी हर तरह देखें तो भगवान जी का हर चमत्कार प्राकृतिक घटना लगने लगेगा, चाहे वह उनके महानिर्वाण से पहले हुआ हो या बाद में। काश्मीर की हर विक्राल समस्या में सूक्ष्म तौर पर वे हस्ताक्षेप करते रहे हैं।

कारगिल के युद्ध में भगवान जी के योगदान के बारे में तो अखबारों में छप चुका है। जब पत्रकार श्री बी.एल. काक ने 18 ग्रेनेडियर्स के एक अधिकारी का हवाला देते हुये अपनी रिपोर्ट छापी कि टाइगर हिल के युद्ध में भगवान जी ने सेना का साथ दिया था तो पाकिस्तानी अधिकारियों का हिल उठना तो स्वाभाविक था। भारतीय अधिकारी भी चकित रह गये थे। 18 ग्रेनेडियर्स के उस अधिकारी ने भी जिसने टाइगर हिल पर भगवान जी को देखा था, डायरी में लिखा था कि कोई उसकी बात पर विश्वास नहीं करेगा।

1971 के भारत पाक युद्ध के समय खरयार, श्रीनगर में उनके आश्रम में उनके कुछ भक्तों ने प्रार्थना की कि देश को बचा लें। भगवान जी ने उनमें से एक भक्त को दर्शन दिये और कहा कि सब मिलकर एक विशेष वस्तु ले आयें और लगातार चार दिनों तक शाम को होने वाली आरती के समय उसकी आहुतियां चढ़ाएं। चार दिनों तक उन सबने ऐसा ही किया और चौथे दिन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने आकाशवाणी और दूरदर्शन पर घोषण की कि पाकिस्तान सेना के जनरल नियाज़ी ने भारतीय सेना के सामने हथियार डाल दिए है, बिल्कुल आहुतियों के समापन पर।

कश्मीर के एक जाने माने गायक दिलीप लंगू ने उन्हें सपने में देखा था। भगवान जी ने दिलीप लंगू को बताया था कि वे दिल्ली जाने की योजना बना रहे हैं और ऐसी जगह रहेंगे जहां पानी का तालाब होगा। 1990 में जब कश्मीरी पंडितों को कश्मीर छोड़ना पड़ा तो श्री दिलीप लंगू दिल्ली के पंपोश एन्कलेव में अपने रिश्तेदारों के यहां रहने तब चले आये, जब वहां भगवान गोपीनाथ का आश्रम स्थापित हो चुका था, लेकिन पानी का तालाब कहीं नहीं था। दिलीप जी ने पास में देखा तो इलाके को

पानी का वितरण करने वाली सीमेण्ट की टंकी दिखाई दी जो अधिकांश मकानों से ऊंचाई पर स्थित थी। पानी का तालाब ज़मीन पर होता है, ऊंचाई पर नहीं। समय गुज़रने के साथ साथ उस पानी के टैंक में दरारें पड़ने लगीं। उसे तोड़ना पड़ा औरउसी जगह एक और पानी का टैंक जमीन के नीचे बनाया गया। श्री लंगू अपने सपने को सच होता देखकर चकित रह गये कि सचमुच ही भगवान जी उसी जगह रहने चले आये हैं जहां अब पानी का एक तालाब है।

श्री अविनाश पंडिता इंजीनियर हैं और पूर्वी दिल्ली में रहते हैं। उनकी पत्नी भी नौकरी करती हैं। उन्होंने अपनी अलमारी के लॉकर में कुछ नकदी और ज़ेवर रखे थे। भगवान जी के लिये पति पत्नी में अपार श्रद्धा थी। उन्होंने अलमारी के लॉकर में उनका एक चित्र रख छोड़ा था। एक चोर काफी दिनों से उनपर नज़र रखे हुये था। एक दिन जब वे काम पर निकले तो चोर फ्लैट में घुसा। किसी तरह उसने अलमारी खोली और लॉकर से सारी नकदी और ज़ेवर लेकर बाहर निकला। लेकिन भगवान जी तो वहीं थे। वे जानते थे कि मेरे भक्तों ने खून पसीना एक करके यह पैसा कमाया है। न जाने कहां से कोई आदमी वहां पहुंचा। उसे चोर पर शक हुआ और उसने शोर मचाया। आनन फानन में पड़ोसी इकट्ठे हो गये। चोर को पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया गया। पंडिता दम्पति को सारी नकदी और ज़ेवरात वापस मिल गये।

श्री अवतार तिक्कू जो जेनेवा में रहते हैं तब भगवान जी उनके सपने में आये उन्होंने अपने कुछ यूरोपीय दोस्तों को इस सपने के बारे में बताया। एक महिला ने जब सुना कि भगवान जी ने जरूरत मंद बच्चों के लिये कुछ करने को कहा है तो उसने तुरंत ही दो वर्ष के लिये एक धनराशि दे दी। तिक्कू साहब ने एक संगठन की स्थापना

की जिसका नाम 'स्वामीजी एसोसिएशन' रखा गया। एक सप्ताह में ही धन राशि देने वालों की संख्या दस हो गई। संख्या बढ़ती चली गई और कुछ ही समय में 140 बच्चे इस संगठन से सहायता प्राप्त करने लगे। इस तरह एक स्वप्न के माध्यम से भगवान जी ने ज़रूरत मंद बच्चों की सहायता करवाई। श्री तिक्कू विदेशों में भी वार्षिक समारोह भगवान जी के नाम पर आयोजित करते हैं।

दो लड़कियां थीं और दोनों ही बी.ए. की परीक्षा देकर परिणाम की प्रतीक्षा कर रही थी। दोनों बहुत पक्की सहेलियां थीं और बी.एड. करना चाहती थीं जिसे तब बी. टी. कहते थे। दोनों ने फैसला किया था कि जिस किसी को सबसे पहले पता चलेगा कि बी.टी. के लिये प्रार्थना पत्र मांगे गये हैं वह दूसरे को बताएगी। प्रार्थना पत्र देने का अंतिम दिन गुज़रे कई दिन हो गये तो एक लड़की को पता चला वह दुखी हो गई। ऊपर से जब उसे यह भी पता चला कि उसकी सहेली ने उसे बताये बगैर सही समय पर प्रार्थना पत्र दे दिया है तो वह रोने ही लग गई। उसका भाई उसे भगवान जी के पास ले गया और उन्हें सब कुछ बता दिया। भगवान जी ने कश्मीरी में यह वाक्य कहा, "म वद, चान्य जाय तमिस त तसुन्ज जाय चे़। (रोओ मत, उसकी जगह तुम और तुम्हारी जगह वह)" कुछ दिनों बाद उस लड़की के घर वाले एक ऐसे आदमी को ढूंढने में सफल हो गये जिसने पिछली तारीख डलवाकर उस लड़की का प्रार्थना पत्र दाखिल करवा दिया। बी.ए. की परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ। वह पास हो गई थी जबकि उसकी सहेली को कम्पार्टमेंट मिला था। उसे बी. टी. कोर्स में दाखिला मिल गया जबकि उसकी सहेली बी. ए. की परीक्षा में सफल न होने के कारण दाखिला ले नहीं सकती थी क्योंकि उसके लिये कम से कम बी.ए. होना ज़रूरी था।

जब नई दिल्ली के पम्पोश एन्कलेव आश्रम में बब भगवान की मूर्ति स्थापना

हुई उन दिनों मैं बैंगलोर में था। मुझे भी डाक द्वारा निमंत्रण पत्र मिला। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उस निमंत्रण पत्र से विभूति की सुगंध मिली। मेरी धर्मपत्नी और पुत्र वधु ने भी अनुभव किया कि इस कार्ड से सुगंध फूट रही है।

मेरे पास श्री गीता की कई प्रतियां हैं परन्तु उनमें से एक से जो मेरे पिता जी की दी हुई प्रति है मुझे प्राय: इसी प्रकार विभूति की सुगंध मिलती रहती है। अत: उस निमंत्रण पत्र से आई सुगंध मेरे लिये भगवान जी के अनुग्रह का संकेत था या यह एक चेतावनी थी पवित्र और शुद्ध जीवन का निर्वहन करने के लिये। मेरा निजी अनुभव है कि उनकी मूर्ति के सामने बैठने से मन स्थिर होता है और सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं।

श्री नीलकंठ कल्ला एक बड़े सरकारी अधिकारी श्री हरनामसिंह पठानिया के पी.ए. थे। दोनों भगवान जी के भक्त थे। एक दिन श्री कल्ला भगवान जी के पास गये। उन्होंने कहा, "तुम्हारा अफसर तो ठीक है ना? वह जम्मू जा रहा है क्या?"

"ठीक है भगवान जी। आने वाले सोमवार को जम्मू का टूर है।" श्री कल्ला ने जबाव दिया।

भगवान जी ने कल्ला साहब को मिश्री की एक डली दी और कहा, "टूर पर जाने से पहले अपने अफसर को दे देना।" कल्ला साहब ने ऐसा ही किया।

सोमवार के दिन दफ्तर की जीप में पठानिया साहब जम्मू की ओर चले। जीप वे खुद ही चला रहे थे। उनके साथ उनका ड्राइवर और दो चपरासी थे। वे एक छोटा सा पुल पारकर रहे थे कि सामने से सेना की एक जीप आई जिसे एक अफसर चला रहा था। दोनों जीपें टकरा गई। जबरदस्त झटका लगा। पठानिया साहब की जीप को जैसे किसी ने उठाकर पुल के नीचे नाले में रख दिया। जीप बिल्कुल नहीं पलटी और

न ही किसी को चोटें आईं। सैनिकों ने सबको वहां से निकाल लिया और उन्होंने दूसरी गाड़ी में यात्रा जारी रखी।

पठानिया साहब श्रीनगर आये तो सबसे पहले भगवान जी के पास गये और जान बचाने के लिये आभार प्रकट किया।

एक महिला भगवान जी की अनन्य भक्त हैं। वे कहती हैं कि एक बार वे अपने कमरे में लगी भगवान जी की तस्वीर से बातें कर रही थीं। बातें करते करते भगवान जी से उनकी बहस सी हो गई –भक्त और भगवान की बहस। महिला ने कहा, "अगर आप वास्तव में भगवान हैं तो मुझे साक्षात दर्शन क्यों नहीं देते?" इतना कहना था कि वे अर्धचेतना की सी अवस्था में चली गईं। भगवान जी सामने खड़े थे। उन्हें सामने देखकर वे अभिभूत हो गईं। भगवान के प्रति श्रद्धा और प्रेम की भावना से वे भर उठीं और उनसे कहा कि अब तो मेरी बनाई हुई चाय भी पीनी पड़ेगी। उन्होंने कहा, "मेरे लिये तहर (तहरी) बना दो।" कश्मीरी तहरी चावल में हल्दी डालकर बनाई जाती है। तहर में 'चर्वन' (भेड का यकृत) भी डालना होता है। घर में 'चर्वन' तो था नहीं इसलिये महिला ने तहर बनाने में असमर्थता व्यक्त की। "तो सोयाबीन की वडियां डाल दो," भगवान जी ने कहा।

कुछ देर बाद सबकुछ सामान्य हो गया। महिला जैसे होश में आई और देखा कि उनके ससुर सोयाबीन की वडियों का एक डिब्बा लेकर आ रहे हैं। यह असामान्य सी बात थी क्योंकि वे शायद ही घर के लिये कुछ सामान खरीदते थे। खरीदारी का काम हमेशा उनका बेटा करता था। भगवान जी ने जैसा चाहा था वैसी तहरी बनाई गई और उनके आश्रम में प्रसाद चढ़ाया गया। भक्तों से उनके सम्बन्ध का यह एक प्रमाण है।

श्री शंकरनाथ फोतेदार के अनुसार, न्यायमूर्ति एस. एन. काटजू 'शक्ति' साधना करते थे। साधना के दौरान कुछ समस्याएं पैदा हो गई। वे समझ नहीं पा रहे थे कि ये समस्याऐं दूर कैसे की जायें। 1975 के आसपास उन्हें भगवान जी के दर्शन हुये। तब भगवान जी ने उनसे कहा, "तुम्हारे गुरु और मैं एक ही हूं और अब तुम मेरे संरक्षण में हो। असल में तुम्हारे गुरु और मैंने मिलकर तुम्हारा आध्यात्मिक कार्यक्रम तैयार किया है।" काटजू साबह कहते थे कि भगवान जी ने सबकुछ कश्मीरी भाषा में कहा था और उन्हें सब कुछ साफ साफ समझा दिया था। फिर वे अंतर्ध्यान हो गये और काटजू साहब ने अपनी आंखे खोलीं।

यही गोपीनाथ चेतना है जिसमें स्यज़र, पज़र और शोज़र के गुणों के कारण भक्त भगवान जी के साथ आध्यात्मिक संबंध स्थापित करके अपनी समस्याएं हल कर सकता है।

अपने मित्र श्री भोलानाथ हंडू की पुत्री श्रीमती प्रभावती को भगवानजी अपनी बेटी की तरह मानते थे। भगवान जी के महानिर्वाण के बाद प्रभावतीजी हर सुबह सूर्योदय से पहले ही उनके यहां पहुंच जाती थीं। भगवान जी के निर्वाण प्राप्त करने के बाद पहले वर्ष की आवश्यक धार्मिक क्रियाओं के लिये वे स्थान को साफ करके तैयार किया करती थीं।

एक दिन वे बहुत जल्दी वहां पहुंच गई। उन्होंने दरवाजा खटखटाया तो कोई जवाब नहीं मिला। वे वापस जाने को ही थीं कि अचानक दरवाजा खुला। वे देखकर चकित रह गई कि दरवाजा खोलने वाला कोई और नहीं स्वयं भगवान जी ही थे।

"वापस जा रही हो?" उन्होंने प्रभावती जी को रोका, "चलो अंदर।" वे प्रभावतीजी को उस कमरे में ले गये जहां वे आवश्यक धार्मिक क्रियाओं के लिये रोज़ स्थान तैयार किया करती थीं। इसके बाद वे दिखाई नहीं दिये।

प्रभावती जी के लिये यह भगवान जी का स्नेह ही नहीं था, बल्कि उनकी यह प्रतिबद्धता भी थी कि सच्चे मन से काम करने वाला कोई भी व्यक्ति निराश न हो। वे दुनिया से निराशा दूर करने के लिये आये थे। अभी भी उनका यह कर्म जारी है।



भक्तों के विचारों में लीन

13

भगवान गोपीनाथ को समर्पित

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुद्धयच

(हर समय मुझे याद करते हुये जीवन के संघर्ष में जुट जाओ।)

श्री कृष्ण हमसे दिव्य गुणों और प्रतिबद्धता की अपेक्षा करते हैं ताकि हम उनके स्नेह के योग्य बन सकें। जिन लोगों में ये गुण होते हैं वे कृष्ण में लीन हो जाते हैं और कृष्ण भी उनमें वास करते हैं। हममें से जो भगवान जी का अनुग्रह चाहते हैं उन्हें उस योग्य बनना होगा, सत्य का अन्वेषण करना होगा, हर समय दया और सहानुभूति का भाव मन में रखते हुये भगवान गोपीनाथ को याद करना होगा। हमें देखना होगा कि अब तक उनके नाम पर क्या किया गया है, क्या किया जा रहा है और भविष्य में क्या करना होगा?

अपने जीवनकाल में ही भगवान जी ने यह निश्चित कर लिया था कि उनका संदेश किस तरह से फैलेगा। एक दिन दुर्गा मन्दिर, खरयार की प्रबन्धक कमेटी के सदस्य आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये उनके पास पहुंचे तो उन्होंने आशीर्वाद के साथ साथ भवन निर्माण कोष के लिये एक रूपया भी दिया, जैसे ही उन्हें पहले ही पता चल गया हो कि वहां भविष्य में उनका आश्रम बनने वाला है। उनके महानिर्वाण के बाद 1968 में उनके कुछ भक्तों ने उनके मिशन को आगे बढ़ाने के लिए एक ट्रस्ट बनाने की सोची। दुर्गा मन्दिर की प्रबन्धक कमेटी ने वितस्ता नदी के तट पर स्थित मंदिर के साथ ही एक मंजिला भवन बनाने की अनुमति दे दी। एक बड़े से हाल का निर्माण किया गया जहां 1969 में दैनिक 'आरती' और 'पूजा-अर्चना' आरम्भ की गई। 1973 में वहां भगवान गोपीनाथ जी की एक मूर्ति भी स्थापित की गई और भक्तों की

संख्या दिनों दिन बढ़ती चली गई। वह धार्मिक गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। इसके अतिरिक्त वहां कई बड़े साधु सन्त भी आते रहे। इनमें रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द और कोल्हापुर, महाराष्ट्र के गगन गड जी महाराज भी शामिल थे। गगन गड जी महाराज 1980 और 1990 के बीच अमरनाथ यात्राओं के दौरान आश्रम में दो बार आये। भक्तों की गहन आस्था के कारण तथा ट्रस्ट के विभिन्न अधिकारियों के भक्ति पूर्ण परिश्रम से ही यह आश्रम महत्वपूर्ण आध्यात्मिक केन्द्र बन पाया।

तब आया 1990 का वर्ष। कश्मीरी पंडितों को अपनी जन्मभूमि से निकलने के लिये मजबूर कर दिया गया। भगवान जी के भक्त भी जम्मू दिल्ली और दूसरे शहरों में चले गये। कुछ तो विदेश भी चले गये। लगभग पूरे ही कश्मीरी पंडित समुदाय के चले जाने से श्रीनगर के आश्रम की गतिविधियां लगभग रुक ही गई। ऐसी कठिन स्थिति में भगवान की शरण लेने के सिवा कोई चारा नहीं था। भगवान जी के जो भक्त जम्मू चले गये थे उन्होंने अपने घरों में भगवान जी की उपासन शुरू कर ही दी थी। तब उन्होंने बोहड़ी, तालाब तिल्लू में थोड़ी सी ज़मीन ले ली। वहां एक टूटा फूटा श्यड था। इसे ठीक करके कामचलाऊ बना लिया गया और सामुहिक आराधना शुरू की गई। लोगों ने वहां आश्रम बनाने के लिये खुले दिल से दान दिया।

दिसम्बर 1992 में आश्रम की आधारशिला रखी गई और रिकॉर्ड समय में एक दो मंज़िला भवन बनकर तैयार हो गया। इसमें एक प्रार्थना हॉल, यज्ञ की वेदी और कार्यालय के लिये स्थान, एक पुस्तकालय, चौका और कुछ स्नानघर हैं। साथ के खाली स्थान में एक लॉन बनाया गया है। 1993 में यहां भी भगवान जी की संगमरमर की मूर्ति स्थापित की गई। इस आश्रम के निर्माण के दौरान महाराष्ट्र के गगन गड

स्वामी जी महाराज वहां पधारे। उस समय वे वैष्णों देवी की यात्रा पर जा रहे थे। उन्होंने आश्रम का निर्माण बिना किसी व्यवधान के सम्पन्न होने की शुभकामना दी। मूर्ति की स्थापना के दिन भारी संख्या में भक्त आये। होम, पूजा, मंत्रोच्चार, आरती के साथ साथ आश्रम 'ओम् नमो भगवते गोपीनाथाय' के मंत्र से गूंज उठा। जम्मू और इसके आसपास रहने वाले भक्तों के लिये यह आश्रम गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र हो गया है। दूर दूर से भी भक्त यहां आकर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। वे प्रसाद के रूप में तहरी, हलवा या फल लाते हैं जो वहां मौजूद श्रद्धालुओं में बांट दिये जाते हैं। भगवान जी का जन्म दिवस और निर्वाण दिवस हर वर्ष श्रद्धा से मनाए जाते हैं।

स्वामी गगन गड़ जी भगवान जी को बहुत मानते हैं हालांकि कहा जाताहै कि दोनों कभी नहीं मिले थे। परन्तु उनके आध्यात्मिक परिचय को नकारा नहीं जा सकता। जब जम्मू में आश्रम का निर्माण हो रहा था तो गगन गड़ जी को पूर्वाभास हो गया था कि दिल्ली में भी एक आश्रम की स्थापना की जायेगी। भगवान जी के बहुत सारे भक्त विस्थापित होकर दिल्ली और उसकी सीमा से लगे हरियाणा और उत्तर प्रदेश के शहरों में रहने को आये। वैसे पिछले पचास बरसों में काफी कश्मीरी पंडित इन शहरों में बस गये हैं। ये सभी धार्मिक गतिविधियों के लिये एक उपयुक्त स्थान चाहते थे। इसीलिये दिल्ली में एक आश्रम के निर्माण की योजना बनाई गई। यह आश्रम पंम्पोश कॉलोनी में बनाया गया, जहा अधिकतर कश्मीरी पंडित ही रहते हैं। इन्होंने आश्रम के निर्माण के लिये भूमि की व्यवस्था कर दी। पहले तो एक मंज़िला भवन बनाया गया। जिसमें भगवान जी का एक आदमकद् चित्र रखा गया। उनकी 'पादुका' भी वहां रखी गई। आश्रम 1994 से काम करने लग गया और कुछ समय बाद दूसरी मंज़िल का निर्माण भी हो गया। 1999 में इस आश्रम में भी भगवान जी की संगमरमर की मूर्ति

स्थापित की गई। इस आश्रम में भी भक्त रोज़ आरती करते हैं, मासिक होम और भजन कीर्तन करते हैं। भगवान जी का जन्मदिन और निर्वाण दिवस यहां भी पूरे उत्साह से मनाया जाता है। कई भक्त रोज़ यहां आते हैं और एक कोने में चुपचाप बैठ कर भगवान गोपीनाथ का ध्यान करते रहते हैं।

परन्तु दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में लम्बी दूरियों की बहुत बड़ी समस्या है। हर कोई पंपोश कालोनी के आश्रम में रोज़ नहीं आ पाता है। ये भक्त त्योहारों पर कई स्थानों पर मिलते हैं और सामूहित पूजा करते हैं। ऐसे समारोहों का आयोजन नजफगढ़, नोएडा, गुड़गावं और अन्य स्थानों पर होता रहा है। कुछ भक्तों को लगा कि भगवान जी के संदेश को फैलाना, हवन और भजन कीर्तन करना महत्वपूर्ण तो है पर इतना ही काफी नहीं है। उन्होंने महसूस किया कि दीन-दुखियों की पीड़ा को कम करने के लिये और गरीबों को शिक्षा और स्वास्थ्य सेवायें देने के लिये कुछ सार्थक काम किया जाना चाहिए। इसलिये उन्होंने भगवान गोपीनाथ के नाम पर एक फाउंडेशन की स्थापना की, क्योंकि वे जानते थे कि भौतिक शरीर में रहते हुये भी भगवान जी दुखियों की पीड़ा दूर किया करते थे। भगवान जी के जन्मशती समारोहों (1997-98) के अन्तर्गत जगत गुरु भगवान गोपीनाथ जी फाउंडेशन की स्थापना की घोषणा की गई। जिस का विधिवत श्री गणेश 1999 ई. में दिल्ली के उत्तम नगर इलाके में हुआ। यहां दयालसर रोड़ कार्यालय में भगवान जी की संगमरमर की मूर्ति भी स्थापित की गई।

फाउंडेशन की आध्यात्मिक गतिविधियों के लिये उत्तम नगर, दिल्ली के इस केन्द्र पर असंख्य भक्त आकर भजन कीर्तन तो करते ही हैं, साथ ही मानव कल्याण के कई कार्यो की योजनायें भी तैयार की जाती हैं। फाउंडेशन के अंतर्गत उत्तम नगर

(दिल्ली) का यह संस्थान **'सिद्ध पीठ'** निष्ठा-पूर्ण कार्यों का केन्द्र है। जहां रोज़ाना भगवान जी की आरती उतारी जाती है, मासिक होम तथा वार्षिक यज्ञ, सूर्य तथा चंद्र संचार से जयन्ती मनाई जाती है। "प्रकाश भगवान गोपीनाथ" नाम की पत्रिका फाउंडेशन निकालती है। इसमें भगवान जी के संदेश को लेकर लेख तो छपते ही रहते हैं, धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ भक्ति पूर्ण कवितायें भी छपती हैं। ये सभी लेख इंटरनेट पर भी उपलब्ध रहते हैं। फाउंडेशन की तरफ से अब तक दो अंग्रेज़ी में किताबें, एक संस्कृत में, एक उर्दू तथा अब हिन्दी में भगवान जी पर ही केन्द्रित गहन अध्ययन के फलस्वरूप प्रकाशित हुई हैं। भगवान जी के नाम पर चल रहे इन केन्द्रों के अतिरिक्त हर भक्त का घर भी उनका एक मन्दिर ही है। जहां कहीं भी उनके तीन चार भक्त मिल जाते हैं। वे कोई स्थान चुन लेते हैं, जहां इकट्ठे होकर वे यज्ञ करते हैं, भगवान जी की आराधना करते हैं और अन्य धार्मिक कार्य करते हैं। कई समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में ऐसे समारोहों की खबरें समय समय पर छपती रहती हैं। भक्तजन भी अत्यंत प्रसन्नता से इन समारोहों के बारे में बताते हैं। कल्पना कीजिए जम्मू व कश्मीर राज्य सरकार के उन कर्मचारियों की जिन्हें गर्मियों में श्रीनगर जाना पड़ता है। यह दरबार मूव का समय होता है और उन्हें सख्त पहरे में सेन्टूर होटल में रहना पड़ता है। परन्तु यहां भी वे भगवान जी से जुड़े महत्वपूर्ण दिन मनाते हैं, रोज सुबह पूजा और शाम को आरती करते हैं।

बैंगलोर की एच एम टी कॉलोनी में भी भगवान गोपीनाथ के बहुत सारे भक्त रहते हैं। उनकी गतिविधियां भी साल भर चलती रहती है। एच. एम. टी कालोनी की ही एक महिला श्रीमती ऊषा ब्रडू भगवान जी की अनन्य भक्त हैं जो पूरे वर्ष भगवान

जी से सम्बन्धित त्यौहारों का आयोजन तो करती ही है एवं मासिक 'होम' भी बड़ी श्रद्धा एवं आस्था से आयोजित करती है। उन्होंने अपने छोटे से घर को ही भगवान जी का आश्रम बनाया है। असंख्य श्रदालु एवं भक्त पवित्र त्यौहारों पर यहां आकर प्रसाद एवं भगवान जी का अशीर्वाद प्राप्त करते है। इसके अतिरिक्त एक स्थानीय हनुमान मन्दिर और उसके साथ वाले हॉल में भी बड़े समारोहों पर भजन कीर्तन चलता है और इसमें पूरे शहर से आकर लोग भाग लेते है। कश्मीरी पंडितों के विस्थापन का यह सकारात्मक पक्ष है कि भगवान जी के भक्त दूर दूर तक फैल गये हैं। सुदूर उत्तर में लेह जैसी जगह, राजौरी, कलकत्ता, गुवाहाटी और स्विट्जरलैंड तक से भगवान जी से जुड़ी गतिविधियों की खबरें आती रहती हैं। भक्त लोग कई त्यौहारों के अवसरों पर नागपुर, भोपाल, वाराणसी और अन्य शहरों में भी समारोहों का आयोजन करते हैं।

श्री फिलिप सिम्फेनडॉर्फर के अनुसार वे 1978 में भगवान जी से मिले थे। उन्होंने अपने मित्रों के साथ मिलकर ग्लास्टनबेल में एक केन्द्र स्थापित किया। इस पवित्र केन्द्र को स्थापित करने में चौदह वर्ष लगे। भगवान गोपीनाथ के संदेश के साथ साथ वे ईसाई धर्म के प्रति पूरी निष्ठा रखते हैं और प्रभु यीशु को ही अपना मसीहा मानते हैं। साथ ही वे भगवान जी को अपना पथ प्रदर्शक मानते हैं, जो धर्म, राष्ट्र और अन्य सभी भेदों से परे हैं। ऐसा लगता है कि ये भक्त 'ऑरोविल' की तरह का एक नगर बनाना चाहते हैं जो कि श्री अरविंद के भक्तों ने बनाया है। हज़ारों लोग ग्लास्टन बेल के इस आध्यात्मिक केन्द्र में आते हैं। वहां 'हागिया गाइया' या पवित्र धरती के नाम से एक विश्व संस्थान बनाने की योजना है जहां साधकों के रहने के लिये घर बनाये जायेंगे। इसी स्थान पर भगवान जी के आस्ट्रेलियाई भक्त उनका जन्मदिवस और अन्य दिन मनाते हैं।

भगवान जी के नाम पर मानव कल्याण के कई कार्य हो रहे हैं। उनके नाम पर बनाई गई संस्थायें ज़रूरतमन्द लोगों की सहायता तो करती ही हैं कुछ भक्त व्यक्तिगत तौर पर भी आर्थिक और अन्य प्रकार की सहायता करके भगवान जी के प्रति अपनी निष्ठा को अभिव्यक्ति देते हैं। 1997-98 में जगदगुरु के जन्मशती समारोह भारत में ही नहीं आस्ट्रेलिया, जेनेवा और स्विटज़रलैंड में भी सालभर तक चलते रहे। लंदन, मानचेस्टर और न्यू जर्सी में भी उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित किये गये। भारत में वर्ष भर दिल्ली, गोवा, बडौदा, भठिन्डा, कोलकता, पुणे, नागपुर, राजौरी, गुवहाटी, भोपाल, वाराणसी, अजमेर और कई अन्य स्थानों पर समारोहों की श्रृंखला चलती रही। जन्मशती के अवसर पर जम्मू आश्रम ने भी कई समारोहों का आयोजन किया। इनमें स्लाइडों के प्रदर्शन के साथ साथ कई संगोष्ठियां, कार्यशालाएं और पेंटिंग तथा निबंध प्रतियोगितायें आयोजित की गईं। भजन कीर्तन जैसे धार्मिक अनुष्ठान भी हुये।

जन्मशती समारोहों के दौरान ही भारत सरकार ने भगवान गोपीनाथ का तीन रूपये का एक डाक टिकट जारी किया। यह टिकट तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने जारी किया। टिकट का डिज़ाइन प्रसिद्ध कश्मीरी चित्रकार पी. एन. काचरू ने तैयार किया। इसमें वितस्ता नदी के तट पर स्थित भगवान जी का आश्रम दिखाया गया है। यह टिकट केवल भगवान जी के लिये ही नहीं कश्मीर की समूची ऋषि परम्परा के प्रति श्रद्धा की निशानी था। श्रीमती सुषमा स्वराज ने कहा कि कश्मीर में आतंकवाद के चलते ये समारोह भगवान गोपीनाथ के जन्म स्थान के बाहर करने पड़ रहे हैं। उन्होंने कश्मीरी पंडित समुदाय को बधाई दी कि तमाम तकलीफों के बावजूद उन्होंने पूरी श्रद्धा और निष्ठा के साथ एक वर्ष तक इन समारोहों का

आयोजन किया। उन्होंने सार्वभौमिक आध्यात्मिक मूल्यों और भारतीयता के प्रति कश्मीर के योगदान की भी सराहना की।

26 जुलाई 1997 को न्यू जर्सी के जर्सी नगर में नेवार्क एवेन्यू के गोविंद मंदिर में भी एक समारोह का आयोजन हुआ। इस जन्म शती समारोह में प्रतिष्ठित भारतीयों के साथ साथ अमरीकियों ने भी भाग लिया। डेढ़ घंटे के इस समारोह में नाम जप, भजन और सत्संग तो हुये ही कुछ विचारोत्तेजक भाषण भी दिये गये। वक्ताओं ने भगवान गोपीनाथ जी और उनके संदेश के महत्वपूर्ण बिन्दुओं को रेखांकित करते हुये बताया कि उनका संदेश ज्ञान, क्रिया और प्रेम का मिश्रण है। विशुद्ध भारतीय परंपरा का निर्वाह करते हुये वहां उपस्थित लगभग डेढ़ सौ श्रद्धालुओं को हलवा पूरी का प्रसाद खिलाया गया। युवाओं में नैतिक मूल्यों और संस्कारों को प्रोत्साहन देने के लिये भगवान जी से सम्बन्धित विषयों पर निबन्ध प्रतियोगितायें कराई गई। रक्तदान शिविरों का भी आयोजन किया गया। इस तरह से भगवान जी के संदेश के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पहलुओं पर उपयुक्त ध्यान दिया गया। ऐसी गतिविधियां आगे भी जारी रहनी चाहिये। जिससे अधिक से अधिक लोगों को भगवान जी का अनुग्रह प्राप्त होता रहे और चारों ओर प्रेम और शांति का वातावरण बना रहे। इस अवसर पर नगर के महापौर ने इस दिन को भगवान गोपीनाथ दिवस घोषित किया।

अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने में लेखक भी पीछे नहीं रहे। पत्रिका, प्रकाश और काशुर समाचार जैसी पत्रिकाओं में समय समय पर भगवान जी के बारे में कई विचारोंत्तेजक लेख छपते रहते हैं। कवियों ने उनकी प्रशस्ति में मंत्रों, लीलाओं और भजनों की रचना की है। पं. मक्खन लाल कुकिलू ने भगवान जी के कई सूक्ष्म स्वरूपों

को उजागर किया है जिससे फाउन्डेशन ने पुस्तक के रूप में छापा है। और पं. बद्रीनाथ कल्ला ने संस्कृत में अत्यंन्त सुन्दर श्लोकों की रचना की है जो भगवान जी के प्रति श्रद्धा और प्रेम से भरे हुये हैं। हनुमान चालीसा की तर्ज पर एक 'भगवान चालीसा' की रचना पं चमन लाल राज़दान ने की है। नाज़, पृथ्वी नाथ सायिल, रोशन और अमरनाथ धर जैसे प्रमुख कवियों ने सुन्दर गीत लिखे हैं जो प्रमुख गायकों अशोक रैणा तथा विजय मल्ला द्वारा गाये जा चुके है। इन गीतों के कैसेट भी बाजार में मिलते हैं भगवान जी स्वयं संगीतप्रेमी थे और संगीत से उन्हें सहज ही श्रद्धा सुमन अर्पित किये जा सकते हैं। भगवान जी पर गहन अध्ययन के लेख प्रो. सालीग्राम भट, कर्णल लंगर, औतार कृष्ण राज़धान तथा डा. चमन लाल रैणा से समय समय पर 'प्रकाश' के माध्यम से भक्तों को लाभांवित करते है। भगवान जी आध्यात्मिक और भौतिक दोनों स्तरों पर हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। चलिये उनसे पूछें वे हमसे क्या चाहते है।? वे अवश्य बतायेंगे। वे दयालु हैं परन्तु यह सब तब तक नहीं हो सकता जब तक हम हर समय उनकी मूर्ति को अपने मन में नही रखेंगे। तब कुछ भी प्राप्त करना असंभव नहीं होगा। स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा है कि परमात्मा से एकात्म हो चुके महात्मा समाज के आधार स्तम्भ और मनुष्यता के लिये प्रकाश पुंज हैं। भगवान जी भी ऐसे ही है। धर्म उनके लिये कट्टरता या कर्मकाण्ड की विवेकहीन व्यवस्था नही थी। वे मानते थे कि धर्म हमें स्वार्थो और इच्छाओं से ऊपर उठाकर परमात्मा के प्रति प्रेम उत्पन्न कराता है। इसलिये हम जो भी करें वह यांत्रिक रूप से नियमों को मानने की प्रक्रिया नहीं स्वयं में एक सुदृढ़ चरित्र और समाज में आध्यात्मिकता के स्तर को ऊंचा उठाने का कर्म होना चाहिए। 'श्रीरामचरित मानस' के रचयिता महाकवि तुलसीदास ने कहा है कि राम से बड़ा राम का नाम है। लंका तक पहुंचने के लिये वानर सेना पुल बना

रही थी तो श्रीराम जो पत्थर समुद्र में फेंकते वे डूब जाते जबकि वानरों के फेंके पत्थर तैरने लगते। ऐसा इसलिये होता था कि वानर राम का नाम लेकर बड़े बड़े पत्थर उठाते थे और समुद्र में फेंक देते थे। राम अपना नाम नहीं लेते थे। राम के नाम का ऐसा असर था कि चट्टाने तैरकर वांछित स्थिति में आ जातीं। इससे पुल बन गया और श्रीराम की सेना आसानी से समुद्र पार कर गई।

एक और कथा है। एक ब्राह्मण एक झोंपड़ी में तपस्या कर रहा था। एक ग्वालिन पास बहती नदी पार करके रोज़ उसे दूध देने आती थी। अकसर उसे देरी हो जाती जिससे ब्राह्मण का 'संध्या' और तपस्या का कार्यक्रम गड़बड़ा जाता था। एक दिन ब्राह्मण ने ग्वालिन को डांट ही दिया। ग्वालिन ने कहा कि अकसर नाव नदी के उस पार होती हैं और उसे पार उतरने के लिये नाव को अपनी तरफ बुलाना पड़ता है। इसी से देर हो जाती है। जिस दिन नाव उसकी तरफ होती है वह समय पर पहुंच जाती है। ब्राह्मण ने कहा कि नाव की प्रतीक्षा क्यों करती हो। राम का नाम लो और चल पड़ो नदी पर। राम का नाम तो संसार सागर पार करा देता है नदी क्या चीज़ है। उस दिन के बाद वह कभी देर से नहीं आई। ब्राह्मण चकित रह गया। उसने ग्वालिन से पूछा तो उसने बताया कि अब वह नाव से नहीं आती। राम का नाम ले लेती है और नदी के पानी पर चलकर पार उतर जाती है। ब्राह्मण ने इस बात को स्वयं आज़माने की सोची। उसने राम का नाम लिया और धोती थोड़ी ऊपर चढ़ाकर नदी में उतरा। पर यह क्या! वह तो डूबने लगा। वह बाहर निकला और दुखी होकर सोचने लगा कि राम के नाम ने उसे पार क्यों नहीं उतारा। तभी आकाशवाणी हुई जिसने ब्राह्मण को बताया कि अपनी ही बात में उसकी आस्था नहीं थी जभी उसने धोती ऊपर चढ़ाई थी और ग्वालिन ने उसकी सलाह को पूरी श्रद्धा और आस्था से मान लिया था। इससे हमें यह

सीख मिलती है कि भगवान जी के नाम पर हम जो कुछ भी करें, आस्था, विश्वास और प्रतिबद्धता से करें। तभी सफलता मिल पायेगी। वे भौतिक शरीर छोड़ चुके हैं तो क्या। अपने सूक्ष्म शरीर में वे अभी भी मौजूद हैं। हमारी सहायता करने के लिये, हमारा मार्ग दर्शन करने के लिये।

परिवर्तन संसार का
नियम है, वर्तमान का
ध्यान रखो -

श्री गीता जी



30 जनवरी 2000 को भगवान जी के पवित्र चिन्ह बड़े
शानदार जलूस से उत्तम नगर 'फाउन्डेशन'
के स्थापना पर पहुंचाये जा रहे हैं

14

आगे का कार्यक्रम

(भगवान चेतना का प्रसार)

य इदं परमं गुह्यं मदभक्तेष्वभिधास्यति।

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।

(मुझमें परम भक्ति रखकर जो यह बहुत बड़ा रहस्य मेरे भक्तों को बतायेगा वह निःसन्देह मुझे ही प्राप्त करेगा)

भगवान गोपीनाथ जी के रहस्य मय जीवन और उनके संदेश का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त होने के बाद यह प्रश्न उठता है कि अब आगे क्या करना है? जवाब सीधा सादा है। आध्यात्मिक और भौतिक स्तर पर हमें ऐसा व्यवहार करना है जैसा भगवान जी चाहते हैं। शांति, संतोष और विश्वकल्याण का उनका संदेश हमें दुनिया के कोने कोने में फैलाना है। इसके लिये भगवान चेतना या यों कहें कि "गोपीनाथ चेतना" प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। अब प्रश्न यह है कि भगवान चेतना क्या है? क्या सभी लोग इसे प्राप्त कर सकते हैं?

भगवान चेतना एक ऐसी स्थिति है जब हम मन, वचन और कर्म से महान, शुद्ध और पवित्र हों, जब हम सत्यनिष्ठ व्यवहार करें और धर्म के लिये प्रतिबद्ध हों। ऐसी स्थिति में हम दूसरों के लिये जीने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, निष्काम भाव से पीड़ितों और जरूरतमन्दों की सेवा करते हैं। यह प्रेम और स्नेह का, शांति और आनन्द का साम्राज्य है जिसमें हमें जीवन के वास्तविक अर्थ का ज्ञान होता है।

भगवान जी के जीवनकाल में लोग घंटों उनके सामने चुपचाप बैठे रहते थे। उनकी उपस्थिति से ही सबको असीम शांति और संतोष प्राप्त होता था। भगवान जी तो स्वयं भी आसपास से बेखबर पर आनन्द में डूबे रहते थे। उन्हें देखकर सबको आनन्द मिलता था। भक्त लोग भजन गाकर, स्त्रोतों का पाठ करके, नाम स्मरण करके और 'ओम् नमो भगवते गोपीनाथाय' का पाठ करके भगवान चेतना से एकात्म होकर परम आनंद प्राप्त करते हैं। भगवान चेतना से एकात्मता चिर स्थायी आनंद देती है और यह आनंद रोज़मर्रा की इच्छाओं से उत्पन्न कर्म (काम्य कर्म) से नहीं मिलता। हर चेतना एक विशिष्ट प्रकार की लहर होती है। टी. वी. और रेडियों पर प्रसारण भी एक लहर से होता है। ये लहरें चौबीस घण्टे उपलब्ध होती हैं परन्तु हम उन्हें तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हमारे पास उपयुक्त रेडियों या टी.वी. सेट हो और हम उसकी लहरों को प्रसारण की लहरों के अनुसार ढाल लें। भगवान चेतना को लेकर बात करें तो हमारी बुद्धि टी. वी. या रेडियो सेट है और अपनी साधना से हम उसे भगवान चेतना की लहरों के अनुसार ढाल सकते है।। एक बार दोनों लहरें एक दूसरे से जुड़ गई तो हम न केवल भगवान जी को देख पायेंगे बल्कि उनसे बातचीत करके अपनी समस्याओं का हल भी जान पायेंगे। जब यह चेतना हमें प्राप्त हो जायेगी तो हम स्पष्ट देख पायेंगे कि समूची सृष्टि एक ही है। पूर्ण नहीं तो हमें सही रास्ते का कुछ न कुछ आभास तो मिल ही जायेगा। इस उद्देश्य को प्राप्त करना परम आनन्द का विषय है परन्तु इसके लिये किया गया श्रम भी कम संतोषजनक नहीं है।

स्टीवन जे. रोजेन एक भारतविज्ञ थे। वृन्दावन में राधा-कृष्ण की उपासना कर रहे एक साधु ने उनसे एक बात कही थी जो हमारे भगवान जी के लिये भी उतनी

ही सार्थक है। साधु ने चैतन्य महाप्रभु के बारे में कहा था, "चैतन्य प्रेम के ज्वालामुखी थे, जिनके भीतर से आध्यात्मिक आवेश का लावा फूटता रहता था।" भगवान जी भी बिल्कुल ऐसे ही थे। आइये हम भी उनकी चेतना प्राप्त करें ओर उनसे उसी तरह प्रेम करें जिस तरह राधा कृष्ण से करती थी। हम प्रेम के इस संबंध को तब तक अनुभव करें जब तक यह उस अनुभवातीत विस्फोट में न बदल जाये जिससे दोनों एक हो जाते हैं यह तो धारा के विरूद्ध बहना होगा परन्तु इस कर्म का फल इसमें लगे श्रम से बहुत बड़ा है।

इस भगवान चेतना को प्राप्त करना हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। भगवदगीता के अनुसार चार प्रकार के व्यक्ति आत्मा से दूर चले जाते हैं - (1) मूर्ख या अज्ञानी (2) घोर भोगवादी (3) वे बुद्धिमानी जिनकी बुद्धि और ज्ञान पर भ्रम का परदा पड़ा हुआ है और (4) जो दुष्ट हैं। हम कभी भी इन श्रेणियों में नहीं आना चाहेंगे। हमें उन चार प्रकार के भक्तों में होना चाहिये जिनके लिये भगवान कृष्ण ने 'चतुर्विधा भजन्ते माम्' अर्थात चार प्रकार के लोग मेरी पूजा करते हैं, कहा है। ये चार प्रकार के लोग हैं:- (1) आर्त या अत्यन्त दुखी व्यक्ति (2) अर्थार्थी या भौतिक या आध्यात्मिक सम्पदा चाहने वाले लोग (3) जिज्ञासु या जानने के इच्छुक लोग (4) ज्ञानी या सत्य को प्राप्त करने के इच्छुक लोग।

आतंकवाद के चलते हम विस्थापित हो गये। इस लिहाज़ से हम आर्त है। हम सम्पदा के भी इच्छुक हैं, आध्यात्मिक नहीं तो भौतिक सम्पदा को ही सही। हम में सत्य के अन्वेषण की जिज्ञासा भी है। इसलिये हमारे सच्चे भक्त न बनने का कोई

कारण नहीं है। हमें भगवान जी के प्रति समर्पित होकर उनके अनुग्रह की अपेक्षा करनी चाहिए।

भगवान जी अकसर लोगों के मन की बातें बता दिया करते थे। यदि बात कुछ अटपटी होती तो सम्बद्ध व्यक्ति के लिये मुंह छुपाना कठिन हो जाता। यदि कोई प्रश्न या विनती होती तो व्यक्ति को उत्तर या समस्या का समाधान मिल जाता। अकसर वे सीधे शब्दों में बात नहीं करते थे। यह सब इसलिये हो पाता था कि भगवान जी में सार्वभौमिक चेतना थी। वे परब्रह्म से एकात्म थे जो सत्, चित् और आनन्द की प्रतिमूर्ति है। उनमें ऐसी आध्यात्मिक शक्ति थी कि वे किसी भी व्यक्ति के दिमाग की लहरों के उतार चढ़ाव समझ लेते थें। तब वे फैसला करते थे कि उन्हें क्या करना है। हम एकदम से वह स्थिति प्राप्त नहीं कर सकते। साधना से ही यह सम्भव हो पायेगा और भगवान जी का अनुग्रह हमें मिल पायेगा।

हमारी साधना और उनके अनुग्रह का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। हम साधना करेंगे तो उनका अनुग्रह प्राप्त होगा। जीव वैयक्तिक नियमों से बंधी हुई चेतना है। यह चेतना भौतिक और मानसिक नियमों से बंधी हुई हैं। हालांकि यह वैयक्तिकता कभी नष्ट नहीं होती परन्तु यदि हम इसे सार्वभौमिक चेतना से जोड़कर देखें तो हम अपने आन्तरिक सत्य से साक्षात्कार कर पायेंगे। एक तर्कशास्त्री कहेगा कि हर विचार का एक विपरीत विचार होता है और दोनों के मिलने से जो संश्लिष्ट विचार बनता है वह वास्तविकता की एक उच्चतर स्थिति है जिसमें निम्न स्तर के विरोधाभास को नियंत्रण में करके उससे ऊपर उठा गया है। जी. डब्ल्यू; एफ. हीगल के अनुसार इस ब्रह्मांड में सब कुछ अपूर्ण है परन्तु फिर भी वास्तविकता का एक पहलू है। हर चीज़

को साथ लेना है। कुछ भी छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिये हमारे लिये यही अच्छा होगा कि हम अपनी अक्षमता, अपनी अपूर्णता को स्वीकार करें और इसे एक व्यापक चेतना से जोड़ें जिससे कि हम वास्तविकता को उसकी पूर्णता में देख सकें।

इसके अतिरिक्त भगवान जी की विश्वदृष्टि भी महत्वपूर्ण है। इस बारे में उन्होंने अपने सूक्ष्म शरीर में प्रकट होकर आस्ट्रेलियाई भक्त फिलिप सिम्फेनडॉर्फर को विस्तार से बताया था। उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि विश्वकल्याण के लिये आध्यात्मिकता शुद्धता और पवित्रता की आवश्यकता है और इन गुणों की प्रतिष्ठा तभी सम्भव है जब सभी सार्थक संस्थायें और व्यक्ति आपस में मिलकर काम करें। इस महान उद्देश्य को वास्तविकता में बदलने के लिये हमें इस चेतना को संसार के कोने कोने में फैलाना होगा। भगवान जी के नाम पर बने संगठनों और संस्थाओं के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता यहीं पड़ती है। इन संस्थाओं से जुड़े हर व्यक्ति को मानव सेवा ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाना पड़ेगा। भगवान चेतना मनुष्यता की विरासत है। यह हमें वास्तविकता की गहराई में ले जाकर उसके सौन्दर्य और आनन्द का अनुभव कराती है। इसे वैदिक सूत्र 'तत् त्वम् असि' के परिप्रेक्ष्य में देख जा सकता है। इसका तात्पर्य आत्मनिष्ठ, ईमानदारी और वस्तुनिष्ठ मान्यता है। रोज़मर्रा के जीवन में इसका अर्थ आन्तरिक निष्ठा और बाहय शुद्धता के रूप में लिया जा सकता है। इनका महत्व हमारे जीवन के हर क्षेत्र में है। इनसे व्यक्ति का नैतिक, बौद्धिक या भौतिक उत्थान हो सकता है और आध्यात्मिक क्षेत्र में तो इसकी सार्थकता है ही।

भगवान जी के लिये नाम और सत्ता का कोई महत्व न था। न ही वे अपने

इर्द गिर्द लोगों की भीड़ चाहते थे। वे जानते थे कि सत्य एक ही है और कोई भी संत कुछ भी नया नहीं कहता। वह उसी एक सार्वभौमिक सत्य को नये ढंग से कहता है। इसलिये उनके संदेश का प्रचार करते समय यदि कहने का ढंग बदल जाये मगर सार नहीं बदलना चाहिये। हमें भूलना नहीं चाहिये कि भगवान जी को सृष्टि के कण कण की खबर रहती थी। उन्होंने असंख्य लोगों के दुख दूर किये और कईयों को आध्यात्मिक उत्थान का रास्ता दिखाया। ऐसे असाधारण संत की चेतना के साथ एकात्म होकर हम भी स्वयं को समभाव, प्रेम, दया और आनन्द के धरातल पर खड़ा पायेंगे।

कश्मीर आध्यात्मिकता का केन्द्र माना जाता है। इसे प्राकृतिक सौंदर्य के लिये ही नहीं अपितु आध्यात्मिक सुन्दरता के कारण भी स्वर्ग के रूप में जाना जाता है। संसार में भगवान चेतना फैलाकर और अधिक से अधिक लोगों को इससे जोड़कर हमें कश्मीर नाम के इस स्वर्ग की सीमाओं को विस्तृत करना है। कश्मीर की आध्यात्मिकता के अन्वेषण के लिये ग्लास्टनबेल, आस्ट्रेलिया में सराहनीय प्रयास हुआ है। कश्मीर के गौरव को संसार भर में फैलाने के लिये उन्होंने दूसरें संगठनों के साथ मिलकर काम करने की इच्छा ज़ाहिर की है। ऐसे ही केन्द्रों को देश विदेश में स्थापित करने और उन सबके आपसी सहयोग को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। हमें इसे एक विश्वव्यापी आंदोलन बनाना होगा और दुनिया को बताना होगा कि हमारा धर्म सनातन है जो जाति, धर्म और रंग का कोई भेद नहीं मानता। यह केन्द्र ऐसे हों जहां आध्यात्मिक प्रकाश, सत्य का बल, दैवत्व की ऊर्जा तथा नैतिकता की तरंगों का उत्पादन हो। केवल आस्था रखकर प्रार्थना करने से कुछ नही होगा। हमें यह भी

देखना चाहिए कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं, क्यों और कैसे कर रहे हैं? औपचारिक रूप से किसी विचारधारा में विश्वास रखना और आंख मूंदकर इसके रीति रिवाजों को मानने से कुछ नही होता। व्यक्तिगत प्रतिबद्धता से ही आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। हम अपने बारे में ही सोचें तो जीवन में उत्साह कहां रहता है! दूसरों का भला करने से हमारे जीवन को अर्थ मिलता है। ऐसा करके हमें स्वयं को बड़ा प्रमाणित नहीं करना है। यदि हम नेतृत्व ही करना चाहते हैं तो उसमें दूरदृष्टि और आध्यात्मिक शक्ति होनी चाहिये। मानवता की हर समस्या प्रेम और दया से सुलझ सकती है, हमें भूलना नहीं चाहिए।

हमारे संतों का कहना है कि कलियुग में व्यक्ति को सम्पूर्णता का त्याग करके उसके टुकड़ों को महत्त्व देने की आदत हो जाती है। इसी वजह से वह आध्यात्मिकता को छोड़कर भौतिकता की ओर मुड़ जाता है। समकालीन विचारकों ने भी कहा है कि उपभोक्तावाद और व्यापारीकरण जैसी स्थितियों के चलते लालच, घृणा, भय, ईर्ष्या और शत्रुता जैसी वृत्तियां बढ़ रही हैं। परन्तु संतों को इस अंधेरी सुरंग के अंत में प्रकाश भी दिखाई दिया है। उनका कहना है कि कलियुग में आध्यात्मिक उत्थान के लिये अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। हम सबको मिलकर हर मनुष्य को भगवान चेतना के लिये प्रेरित करना है जिससे वे टुकड़ों में जीना छोड़कर सम्पूर्ण दृष्टिकोण अपनायें और अंततः भौतिकता का आकर्षण छोड़कर आध्यात्मिकता की ओर बढ़े। एक पुरानी चीनी कहावत है कि संकेत करने वाली उगंली को चांद मानने की गलती नहीं करनी चाहिये। अंदर की गिरि, को खोलने और पाने के लिये बाहर के आवरण और छिलके को उतारना ही होगा। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि

हमारी परंपरा इतनी मज़बूत हो कि वह हमारे समाज को जोड़कर रख सके। यह तभी सम्भव हो पायेगा जब हम सबसे प्यार करें। कुछ लोगों को यह अव्यवहारिक लग सकता है मगर सबसे प्यार करने की कोशिश ऐसी भी बुरी नहीं है। पर ऐसा तभी किया जा सकता है जब सामाजिक ढांचा मज़बूत हो और सामूहिकता की भावना उसे शक्ति देती हो।

तिब्बत में 'ध्यान' को 'गोम' कहते हैं। 'गोम' का शाब्दिक अर्थ है पूर्ण रूप से सकारात्मक, रचनात्मक और यथार्थ वादी दृष्टिकोण प्राप्त करना। तिब्बती बौद्ध धर्म की 'वज्रयानी शाखा' का यह महत्वपूर्ण पहलू है। ध्यान से हम अपने विचारों में परिवर्तन ला सकते हैं ओर हम यथार्थ से बेहतर सम्बन्ध बना पाते हैं जिससे हमारे मन में सद्‌भावना का विकास होता है इसी सदभावना से हम सेवा के रास्ते पर चल सकते हैं। यथार्थ ही नहीं 'परम सत्य' भी कठिन 'साधना' से ही प्राप्त किया जा सकता है। यही सेवा और साधना भगवान चेतना के मूलाधार हैं। धर्म को 'परमात्मा और अन्य मनुष्यों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध' के रूप में परिभाषित किया गया है। यह परिभाषा भगवान चेतना के इस आंदोलन पर सटीक बेठती है। साधना 'ब्राह्म' के साथ हमारे सम्बन्ध को पूर्णता की ओर ले जायेगी और सेवा मनुष्यों के साथ हमारे सम्बन्य को सुदृढ़ करेगी। उच्च आध्यात्मिक स्तर पर देखा जाए तो परमात्मा और उसकी रचना में कोई अंतर नहीं है। उसकी सृष्टि भी तो उसी का प्रतिरूप है।

रॉबर्ट लॉरेंस स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'ए क्वेकर बुक ऑफ विज़डम' में लिखा है कि इन दिनो लोगों को पहचानने के लिये यह देखा जाता है कि उनके पास क्या है न कि वे क्या हैं। यही आज के युग की भौतिकवादी सोच का मूल कारण है।

भगवान चेतना इस सोच को बदल सकती है। इसी चेतना से सत्य, स्वतंत्रता, विवेक, नम्रता, सरलता, अहिंसा और सेवा जैसे मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा बनी रह सकती है। परन्तु इसके लिये हम में कल्याण की भावना होनी चाहिये, मिलकर काम करने की भावना होनी चाहिये जिससे हम व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर मानव मात्र के कल्याण के लिये प्रतिबद्ध हों। विभिन्न विचारधाराओं से भरे इस बहुलतावादी युग में मनुष्य चक्कर में पड़ गया है। विभिन्न मज़हबों से उम्मीद की जाती है कि वे व्यक्ति की नैतिकता और विवेकशीलता को प्रोत्साहन देकर उसकी दृष्टि को साफ करें। परन्तु दुर्भाग्य से इन मज़हबों और धर्मों को अपने निजी स्वार्थों के हाथों बंधक बनाकर कुछ लोग नफरत की दीवारें खड़ी कर रहे हैं। इन दीवारों को तोड़ना होगा। ध्यान रखना होगा कि व्यक्ति के भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति में कोई असंतुलन न रहे।

परन्तु भगवान चेतना के इस आंदोलन के दौरान इस बात का ध्यान रखना होगा कि यह एक अलग मत न बने। जिसमें अधिक से अधिक लोगों को मिलाना ही हमारा उद्देश्य बनकर न रह जाये। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में केवल विश्वास करना नहीं, अनुभव करना, अस्तित्व मे आना और एकात्म हो जाना, ही सही तरीका है। यह संघर्ष तो है ही मगर ऐसा संघर्ष जो हमें पूर्णता और दिव्यता की ओर ले जाकर अंततः परब्रह्म से मिला देगा। स्वामी जी कहते हैं कि आत्मा एक तूफान में फंसी हुई एक छोटी सी नौका है जो ऊंची ऊंची लहरों में डुबती उतरती अच्छे और बुरे कर्मो के अधीन आगे पीछे हो रही है। कार्य और कारण की इन लहरों से हमें असहाय नहीं

होना है। भगवान चेतना के इस आंदोलन में भागीदार बनकर हम स्वयं ही अपने भाग्य के निर्माता हो सकते हैं। कश्मीर में पैदा हुई इस छोटी सी चिंगारी को एक विशाल प्रकाश पुंज बनाना होगा जिससे समूचे विश्व में प्रकाश फैले। रमन महर्षि ने सच कहा था कि 'जब आप सभी प्राणियों के प्रति एक समान प्रेम का अनुभव करें, जब आप का हृदय इतना विशाल हो जाये कि सारी सृष्टि को अपने में समाने के लिये तैयार हो जाये तो किसी भी चीज़ का त्याग करने की भावना मन में उत्पन्न ही नहीं होगी। आप सांसारिक जीवन से ऐसे अलग हो जायेंगे जैसे एक पका हुआ फल पेड़ से अलग हो जाता है। आप को लगेगा कि सारा संसार ही आपका घर है।'

परन्तु 'साधना' और 'सेवा' को साथ साथ चलना होगा। भगवान जी 'विचार' को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते थे। विचार से ही सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसी से सिद्धान्त को व्यवहारिक बनाया जा सकता है और तर्क को वास्तविकता से जोड़ा जा सकता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिये विचार 'जिज्ञासा' है, अर्थात जानने की इच्छा है। इसमें आस्था और विज्ञान दोनों के तत्त्व हैं और यह चेतना की निरन्तरता और वास्तविकता को तो प्रभावित करता ही है, कर्म और चिंतन की समग्रता भी इससे निर्धारित होती है। इसलिए इसे सेवा से अलग नहीं किया जा सकता। सेवा को साधना से भी अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों ही अन्योंन्याश्रित हैं। किसी भी वैज्ञानिक सूत्र के ये सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष हैं। शक्ति के उपासक मां भगवती को चार विशिष्ट रूपों में देखते हैं- 'शक्ति', 'महाकाली', 'सरस्वती', 'लक्ष्मी', सरस्वती और लक्ष्मी एक ही चीज़ के सिद्धान्त और व्याहारिक पक्ष का

प्रतिनिधित्व करती हैं। सरस्वती हमें ज्ञान देती हैं और लक्ष्मी इस ज्ञान का व्यावहारिक इस्तेमाल करके धन कमाना सिखाती है।

समूची मानवता को एक करने और शांति और प्रसन्नता फैलाने के लिये भगवान जी दो चीज़ों पर ज़ोर देते थे – 'समदृष्टि' और 'सर्वात्मभाव'। यह वे केवल कहते नहीं थे करते भी थे। यहां यह कहना भी उचित होगा कि गीता में योग की परिभाषा 'समत्वं योग उच्यते' भी दी गई है। और गीता में पंडित किसे कहा गया है? उसे जो सब को एक ही नज़र से देखें,

"विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

(ज्ञानीजन विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चमार सभी को समभाव से देखते हैं।)

भगवान चेतना को विश्व भर में फैलाने के इस आंदोलन के दौरान हमारी साधना ही हमें यह 'समदृष्टि' देगी। 'सेवा' तो सर्वात्मभाव से ही संभव है। जब तक हम सबको अपना न समझें, सबके प्रति सहानुभूति का भाव न रखें, हम सेवा नहीं कर सकते।

भगवान जी को 'आम आदमी का संत' कहा जाता था। आज के कई संतों और महात्माओं की तरह वे धनी और विशिष्ट व्यक्तियों को कोई प्राथमिकता नहीं देते थे। पवित्र, आध्यात्मिक लोगों का वे विशेष सम्मान करते थे। सप्तर्षियों, देवर्षि नारद और अन्य ऋषियों की भांति वे बिना किसी भेदभाव के कभी भी, किसी की भी

सहायता या मार्गदर्शन करने के लिये तैयार रहते थे। एक बार उनकी एक भक्त के साथ एक मुस्लिम नौकर आया। उसके हाथ में फलों का एक थैला था। भगवान जी ने अधिकतर फल उस मुस्लिम नौकर को दिलवाये क्योंकि उसे एक फल खाने की इच्छा हो रही थी और वह सोच रहा था कि इतने लोगों के बीच उसे फल कौन देगा। भगवान जी घंटों शास्त्रीय संगीत सुनते रहते थे। जिसके लिये हिन्दू और मुस्लिम संगीतकार उनके यहां आते थे। अधिक शराब पीने के कारण एक व्यक्ति मानसिक तौर पर अस्वस्थ हो गया था। भगवान जी ने उसे अपने साथ रखने की सोची। कई भक्तों ने विरोध किया परन्तु भगवान जी ने उसे तब तक अपने पास रखा जब तक वह सामान्य न हो गया। तुल मुल (क्षीर भवानी) जाते समय उन्होंने एक भक्त को कंधों पर लादकर एक नदी पार करवाई क्योंकि वह पानी में चलकर दूसरी ओर जाने में डर रहा था। यह सौभाग्यशाली भक्त थे पंडित गोविन्द जू कौल जो स्वयं भी एक पवित्र आत्मा और भगवान जी के अनन्य भक्त थे। श्री कौल 1947 के पहले से भगवान जी के काफी निकट रहे और अंत तक उनके साथ रहे।

किसी का स्वर्गवास हो जाता तो भगवान जी उसके संबंधियों को सांत्वना देते हुए आत्मा की अमरता की याद दिलाते। किसी के बच्चे की शादी होना संभव न होता तो भगवान जी सारी समस्यायें सुलझा देते। बिल्ली उनके आसन पर बैठ जाती या चूहा उनके पैर में छेद कर देता, उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता। सूखी जमीन को पानी की जरूरत होती तो वे बादल बरसा देते। किसी समारोह पर बारिश का खतरा मंडरा रहा होता तो वे बादलों को कहीं और भेज देते। एक बार कड़ाके की ठंड पड़ी। श्रीनगर में डल झील जम गई और लोगों के लिये जीना कठिन हो गया। उन्होंने भगवान जी

के पास जाकर विनती की कि वे कुछ करें। उन्होंने रज़ाई उतार फेंकी और लम्बे समय के बाद स्नान किया। अगले दिन सर्दी कम हो गई, बर्फ पिघलने लगी और लोगों को राहत मिली। उस दिन के बाद भगवान जी ने कभी भी रज़ाई का इस्तेमाल नही किया। किसी साधु या ज़रूरतमन्द व्यक्ति को उन्होंने एक रूपया दिया तो उसके पास धन की कमी न रही। अपने बटुवे के सारे पैसे उन्होंने एक ज़रूरतमन्द के हाथ पर रखे तो विभिन्न स्रोतों से उसके पास आवश्यक धन आ गया। उन्होंने एक आदमी की मृत्यु को तब तक रोक दिया जब तक उनके घर में चल रहा विवाह सम्पन्न न हो गया। ये उनके दया भाव के कुछ उदाहरण हैं और इसी भाव से हमें 'जनता जनार्दन' की सेवा के लिये हमेशा तैयार रहना है।

विज्ञान और तकनीकी विकास ने सभी देशों को निकट ले आने के साथ साथ ज्ञान के नये स्रोत भी खोले है। आत्मा के अस्तित्व को भी महत्व दिया जा रहा है। सापेक्षता और क्वांटम के सिद्धान्तों ने प्राचीन भारतीय ज्ञान की सार्थकता तो सिद्ध कर ही दी है। मानव जीवन और व्यवहार पर चेतना के प्रभाव का भी अवलोकन किया है। हमें सहिष्णुता की नहीं विभिन्न दृष्टिकोणों और विचाराधाराओं को उनके अपने परिपेक्ष्य में सही मानने की आवश्यकता है। यह मानने की ज़रूरत है कि चेतना के विभिन्न स्तरों पर हर विचारधारा का अपना महत्व है। भारतीय दर्शन में तीन महत्व पूर्ण बातें कही गई है :-

(1) एकं सत् विप्रा: बहुधा वदन्ति - एक ही सत् को ज्ञानी कई प्रकार से व्यक्त करते हैं।

(2) उदार चरिताणां तु वसुधैव कुटुम्बकम् - उदार मन वाले लोगों के लिये सारा विश्व एक परिवार है।

(3) यत्र विश्वं भवति एक नीडम् - संसार, एक ऐसा घोंसला बने जहां हर किसी को आश्रय मिले।

ऐसी स्थिति में भगवान जी का यह संदेश बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है कि संसार के सभी धार्मिक संगठनों और साधना केन्द्रों को अज्ञान का अंधेरा दूर करने के लिये एकजुट होना चाहिए। कल्पना कीजिए एक ऐसे विश्व की जहां सभी धर्मों की अच्छी बातें स्वीकार की जायें, विभिन्न विचारधाराओं के सभी नैतिक मूल्य अपनाये जायें और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक सहअस्तित्व सुनिश्चित किया जाये। इसी से मनुष्य, भौतिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तरों पर विकसित हो पायेगा। भगवान जी का यही सपना रहा है और 'भगवान चेतना' के इस आंदोलन का भी यही उद्‌देश्य है। इस आंदोलन की शुरूआत उनके कुछ अनन्य भक्तों ने कई स्थानों पर तथा जगतगुरु भगवान गोपीनाथ जी फाउन्डेशन ने उत्तम नगर, नई दिल्ली से की है। देश में जम्मू, दिल्ली, बैंगलोर और अन्य शहरों में इस आंदोलन से जुड़ा कार्य चल रहा है। विदेशों में सिडनी (आस्ट्रेलिया), जेनेवा (स्विटज़रलैड) और न्यू जर्सी (अमरीका) में भी कार्य चल रहा है। आंदोलन के इन सभी हिस्सों को एकजुट होकर पूरे संसार में योजनाबद्ध तरीके से काम करना होगा। इससे आंदोलन को सही दिशा मिलेगी और संसाधनों का सही उपयोग हो पायेगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो लोग इस भगवान चेतना से एकात्म होंगे वे भौतिक जीवन की पीड़ाओं से छुटकारा पाकर परम आनंद प्राप्त कर लेंगे।

इस कार्यक्रम में हम सबको इस बात का ध्यान रखना होगा कि यह एक पवित्र आध्यात्मिक यात्रा है। इसमें अहंकार के लिये कोई स्थान नहीं। यह व्यवसाय नहीं, सेवा है। इसका लक्ष्य साधना है, ख्याति नहीं। इसमें अनुशासन तथा मर्यादा का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

गुरु वन्दना

मेरा हाथ पकड़ कर मुझको उस रस्ते पर ले जाओ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
मुझे शारिका माता की गोदी में पहुंचा दे जो पथ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
मुझे ध्यान का ज्ञान तुम्हीं तो दे सकते हो गुरु मेरे।
'मैं' हूं कौन और 'वह' क्या है तुम्ही बताओ गुरु मेरे।
सांस सांस में ओम् जाप बस जाये जिस पथ पर वह पथ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
मुझे बताओ यह 'श्रीचक्र' कहां से आया क्या है यह?
'यंत्र तंत्र बतलाओगे ही मन मेरा कैसा है यह?
मन के सभी मनकों की माला फिरवा दे जो पथ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
गणपति के चरणों में तिलक लगाकर हारी पर्वत में।
करूं परिक्रमा ध्यान लगाऊं फिर उस 'देवी आंगन' में।
मुझको दिलवा दे जो सहज समाधि वही दिखला दो पथ
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
वेद पढ़ा दो शास्त्र और गीता का ज्ञान दिला दो ना।
अर्थ ज्ञान करवा दो मेरे मन को ज़रा हिला दो ना।

सब अर्थो की व्यापकता का दर्शन करवा दे जो पथ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
रूप दिखा दो परम तत्व का यदि उसका है कोई रूप।
भेद बता दो उसका क्यों कहते हैं उसे अभेद स्वरूप।
दूर करे हर संशय सब स्पष्ट करवा दे जो वह पथ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।
सभी विकृतियां नष्ट करूं क्षण भर में सघन तपस्या से।
शुद्ध बनूं मैं 'कुन्दन' सब कुछ पाऊं कठिन साधना से।
जो स्वतंत्रता का प्रकाश दे आह्लादित कर दे जो पथ।
सत्य जिसे आलोकित करता हो उस पथ पर ले जाओ।

(श्री कुन्दन की कश्मीरी कविता का अनुवाद)

अनुवादक दिलीप कुमार कौल

भगवान गोपीनाथ जी को श्रद्धांजलि

- राष्ट्रकवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त

ज्योति भूमि जय भारत देश।
ज्योति चरण धर विचरे प्रभुवर,
जहाँ विविध धर वेश।
समाधिस्थ सौन्दर्य हिमालय,
शुभ्र शान्तिमय, आत्म-तेज-मय,
गंगा यमुना जल ज्योतिर्मय
हंसता जहां अशेष।
लोटे यहाँ धूलि पर ईश्वर
राम, कृष्ण, गौतम का तन धर
आए गोपीनाथ महात्मा
लाए प्रभु सन्देश।
श्रद्धांजलि अपिर्त करता मन
मंगलमय हो दिव्य आगमन,
पावन करे धरा को उनके
पद रज कण, हर क्लेश।
ज्योति भूमि जय भारत देश।

(यह रचना राष्ट्रकवि की अन्तिम कविताओं में से है। यह उन्होंने 29 नवम्बर 1976 को प्रयाग में भगवान श्री गोपीनाथ जी सत्संग मंडल के उद्घाटन समारोह में स्वयं पढ़ी थी।)

भगवान गोपीनाथ जी,

1. ब्रह्म के साथ एक, चित तथा आनंद की प्रतिमूर्ति, सृष्टि, स्थिति, संहार, पिदान एवं अनुग्रह, पांचों शक्तियों से सम्पन्न थे। त्रिलोकीनाथ धर कुन्दन

2. उन्होंने 1999 के कर्गिल युद्ध में भारतीय सैनिकों का मार्ग दर्शन किया। दैनिक एक्सलशियर
बी.एल.काक वरिष्ठ पत्रकार

3. वे श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा महात्मा बुद्ध की श्रेणी में आते हैं। कोल कल्पतरु चंडी (प्रयाग)
राष्ट्र कवि सुमित्रानंदन पंत

4. श्रेष्ठ संतों में एक, जिन्होंने भारत एवं विश्व को सुशोभित किया। वे ज्ञान, भक्ति और कर्म के आश्चर्यजनक संमिश्रण थे। एशिया ऑबज़ॅरवर (न्यूयार्क संस्करण)

5. उन्होंने चेतनाओं में परिवर्तन लाया, प्रकृति और उसकी विभिन्न शक्तियों के साथ संतुलित जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी, दूसरों के दैनिक जीवन में वे सहायक बने और मानव कल्याण के लिये तत्परता व्यक्त की। उनके भक्तों को अभी भी उनका सानिद्य प्राप्त है, स्थूल शरीर के बिना भी वे जीवित हैं। कॉसमॉस (ऑस्ट्रेलिया)

6. एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग करने वाले जो ईसा के समय से आज तक अद्वितीय हैं। पी सिम्पफेनडॉरफर (ऑस्ट्रेलिया)

7. यह कोई आश्चर्य नहीं कि वे शनिदेव की उपासना करते थे। ज्योतिषी मानते हैं कि शनि मकर का स्वामी है। मकर का भारत पर स्वामित्व है। अतः शनि भारत का भाग्येश है। शनि काल का भी द्योतक है। यही शिव का महाकाल स्वरूप है।

पैट्रिज़िया नोरेली - बेचिलेट
(निदेशक, एऑन खगोल केंद्र दक्षिण भारत)

इनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर भारत सरकार ने इनके चित्र वाला
3 रुपये का डाक टिकट सम्मानार्थ जारी किया।



जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी

चैरिटेबल, कल्चरल एण्ड रिसर्च फाउन्डेशन (रजि.)

1/बी, दयालसर रोड़, बैंक ऑफ बरोड़ा लेन, उत्तम नगर, नयी दिल्ली - 59